जून 2015 वार्षिक मूल्य ₹ 150

साधन

संस्थापक : समर्थ गुरु परम संत डा. चतुर्भुज सहाय जी

ॐ

रामाश्रम सतसंग, मथुरा

ॐ

साधन

जून-2015

अनुक्रमणिका

ॐ
साधन

वेद-मंत्र

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।
त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम॥

— सामवेद

हे बलों के रक्षा करने वाले इन्द्र! (सब तरह की शक्तियों के केन्द्र परमेश्वर) तेरी मित्रता में बलवान होकर हम न डरें, निर्भय हों, विजयी हों। हे अपराजेय ब्रह्म! तुम्हें हम प्रणाम करते हैं। ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

वर्ष : 82 अंक : 11	जून–2015	वार्षिक मूल्य : ₹ 150.00 इस अंक का : ₹ 16.00

-: विनय :-

प्यारे, मोहिं परखिये नाहीं।
हम न परीक्षा जोग तुम्हारे, समझहु यह मन माहीं॥1॥
पापहिं सों उपज्यो पापहिं में, सिगरो जन्म सिरान्यो।
तुव सनमुख सो न्याय तुला पै कैसे कै ठहरान्यो॥2॥
दयानिधान, भक्तवत्सल, करुनामय, भव भयहारी।
देखि दुखी, 'हरिचन्दहि' कर गहि, बेगहि लेहु उबारी॥3॥

— भक्त श्री हरिश्चन्द्र जी

अमृत बिन्दु

जीव के प्रति जगत जननी का हित या निर्दयता

— परमपूज्य गुरुदेव

[जीव का सृजन, माँ का एक आनन्द खेल, जगत जननी का स्नेह सिक्त एक नाटक, पढ़ें आप भी तो एक पात्र हैं। —सं०]

पुराणों के अनुसार ब्रह्माण्डीय बुद्धि को 'शिव' कहते हैं। और ब्रह्माण्डीय मन को 'ब्रह्मा' कहते हैं। इसी ब्रह्माण्डीय मन या ब्रह्मा के द्वारा ही स्थूल रचना का कार्य आरम्भ होता है। इसलिए इसको ही सृष्टि का रचने वाला माना गया है।

मन और बुद्धि दोनों जड़ हैं। उनमें कोई निजी ताकत नहीं पर जब चैतन्य पुरुष स्वयं इनमें आकर व्याप्त हो जाता है, वह खुद इन औजारों से काम लेने लगता है तो यह हरकत में आ जाते हैं और कार्य करने लगते हैं। उसके आश्रय से ही यह चलते हैं। जैसे शरीर में आँख देखती है, नाक सूँघती है, मन विचारता है इत्यादि। पर चैतन्य के निकल जाने पर यह शक्तियाँ कुछ भी नहीं कर पातीं, इसी प्रकार चैतन्य के सहारे ही ब्रह्माण्डीय मन व ब्रह्माण्डीय बुद्धि अपना-अपना काम करती हैं। यहाँ की व्यापक आत्मा का नाम 'विज्ञानमय आत्मा' और 'मनोमय आत्मा' शास्त्रों ने दिया है।

आगे आने वाली स्थूल सृष्टि के लिए ब्रह्मा या ब्रह्माण्डीय मन ने संकल्प किया उसके ख्याली नक्शे अपने दिमाग में खींचे यह 'मानसिक' सृष्टि कहलाती है। जब निश्चय हो चुका कि ऐसे ही काम करना ठीक होगा तब इन ख्याली शक्लों व मानसिक रूपों को जीवन प्रदान करने के लिए वही आदि माया की धार फिर आगे बढ़ी। उसने जीवन तत्व अथवा प्राण तत्व अपने चारों ओर बखेर दिया और उसमें जिन्दा करने के लिए उन सारी शक्लों को पटक दिया। इस तरह इस जीवन तत्व का भी धीरे-धीरे एक मण्डल बन गया, इसी को 'प्राणमय कोश' कहते हैं। मनोमय कोश से चैतन्य पुरुष का प्रकाश बढ़कर इस प्राणमय कोश में ही व्याप्त हो गया। यही 'प्राणमय आत्मा' कहलाती है।

मनोमय कोश में बैठकर ब्रह्मा ने जो-जो नक्शे खींचे थे, जो उसने मानसिक रूप बनाये थे, वह सब मनुष्य, पशु, पक्षी, देव, असुर आदि के ख्याली शरीर इस प्राण तत्व के अन्दर तैरने लगे। इनमें कुछ स्थूलता आई। प्राण तत्व के मिल जाने पर इन पात्रों ने सूक्ष्म और स्थूल के बीच की शक्ल पकड़ ली इन्हीं का नाम 'प्राणमय शरीर' या 'ईथीरियल बॉडी' है।

सूर्य की किरण जैसे पात्रों में घुसकर उन्हें प्रकाशित कर देती है उसी प्रकार आदि सूर्य चैतन्य आत्मा की किरण का एक-एक बिन्दु इस

शरीर में प्रविष्ट हुआ और उन्हें प्रकाशित कर दिया। वह उसके एक क्षुद्र अंश को लेके 'जीव' रूप से प्रकट हो गये। जो-जो शक्ति उस महान चैतन्य सागर में थी उन सब में से एक-एक भाग इन जीवों को मिला। बुद्धि, मन, स्वतन्त्रता आदि सभी इसके हिस्से में आये मगर छोटे रूप में। सूर्य की किरण सूर्य से जुदा नहीं होती, जो-जो गुण सूर्य में हैं वह किरण में भी मिलते हैं परन्तु बहुत ही हल्के। अग्नि में जो गुण हैं वही चिनगारी में भी होते हैं। जल में जो गुण हैं वही जल की बूँद में भी होते हैं। परन्तु जब तक किरण अपने असली भण्डार सूर्य से मिल के एक नहीं हो जाती, चिनगारी अपने भण्डार अग्नि में समावेश नहीं कर जाती और जल की बूँद अपने आदि स्रोत सागर में नहीं पहुँच जाती तब तक उसकी सामर्थ्य अल्प ही रहती है। जीव भी अपने भण्डार से अलग हो गया, उसमें विशेष ज्ञान और विशेष सामर्थ्य नहीं रही, इसलिए दुःखी हो गया और दुःख को दूर करने को वही फिर आगे बढ़ा।

बढ़ना चाहिए था उसे ऊपर की ओर, अपने पीछे की ओर, पर वह माया के धक्के से नीचे की ओर ही गिरा। इन प्राणियों को ढकेलती हुई माया या प्रकृति की धार भी इनके संग उतरी और झट ही उसने एक धूलि का कोट बना लिया और उसका मण्डल प्राणमय कोश के चारों ओर फैला दिया। यह 'अन्नमय' कहलाया । इस प्रकार पाँच मण्डलों में एक ब्रह्माण्ड की रचना हुई। अन्नमय कोश में पृथ्वी तत्व, प्राणमय कोश में जल तत्व, मनोमय कोश में अग्नि तत्व, विज्ञानमय कोश में वायु तत्व और आनन्दमय कोश में आकाश तत्व प्रधान रहता है, दूसरे और चार तत्व गौण रहते हैं यह सृष्टि का नियम है।

अज्ञान का कारण और स्थूल देही

प्राणमय शरीर वाले प्राणी अपनी सूक्ष्म देही लिए हुए इस धूलि कोट में आ पड़े। धीरे-धीरे उनके सूक्ष्म पात्रों पर पृथ्वी के कण जमने लगे और कुछ दिन में उसी आकार की मिट्टी की तह जम गयी, यही स्थूल शरीर कहलाता है, जो बिल्कुल प्राण-शरीर की सूरत का होता है। अभी तक वह हलका था अब मिट्टी के लिपटने से भारी हो गया। बाहर की चाहरदीवारी तक ही यह असर सीमित नहीं रहा बल्कि उसने सारी आन्तरिक शक्तियों मन, बुद्धि, अंहकार और इन्द्रियों को भी स्थूल बना डाला और यह सब मोटी और भद्दी बन गईं।

ऐसा उसने क्यों किया?

लोग पूछने लगते हैं कि हमें दुःख में फंसाने से माया को क्या लाभ हुआ, यह तो निर्दयता हुई, इसके कई उत्तर हो सकते हैं, परन्तु संक्षेप में हम इस पर विचार करने लगें तो दो बातें समझ में आती हैं। एक यह कि सुख और दुःख, शान्ति और अशान्ति कोई अलग-अलग वस्तु नहीं हैं वास्तव में एक ही चीज की यह दो शक्लें हैं। जहाँ दो नहीं वहाँ एक कहाँ से आयेगा? जहाँ रात नहीं वहाँ दिन किसको कहोगे? जहाँ कड़वा नहीं वहाँ मीठे की कदर क्या होगी? जहाँ पुत्र नहीं वहाँ पिता का दर्जा कहाँ से पाओगे? जहाँ स्त्री नहीं

वहाँ पति कैसे बनोगे? जहाँ शिष्य नहीं वहाँ गुरु कौन कहेगा? इत्यादि। कहने का तात्पर्य यह है। कि संसार की उत्पत्ति और स्थिति इस द्वन्द से ही है। जिस समय हर्ष-शोक, सुख-दुःख, राग-द्वेष, शान्ति-अशान्ति का द्वन्द जाता रहेगा उस समय यह जगत ही मिट जायेगा। सारा बखेड़ा ही खत्म हो जायेगा। जिस वस्तु को हम अपनी मूर्खता से सुख और दुःख समझ बैठे हैं उसकी वास्तविक सत्ता कुछ नहीं है। यह जगत जननी का खेल है। वह अपनी सन्तान को खेल खिला रही है और खुश हो रही है, हमें देख-देखकर हँस रही है। बच्चे आपस में लड़ते हैं, झगड़ते हैं, चिल्लाते हैं। माता-पिता उसे देख-देखकर प्रसन्न होते हैं। इसलिए कि वे जानते हैं कि असलियत उनके अन्दर नहीं है केवल बालकों का खेल है।

दूसरी बात यह कही जा सकती है कि इस संघर्ष में ही जीवों की भलाई छुपी रहती है। इससे जीवन मिलता है, दृढ़ता आती है, लाभ और हानि को पहचानने वाली बुद्धि का विकास होता है। कर्त्तव्य समझ में आता है। जो बालक सुस्त बैठे रहते हैं, खेलते-कूदते नहीं आपस में मार पीट नहीं करते उनके जिस्म, दिल और दिमाग तीनों जिन्दगी भर कमजोर रहते हैं। जैसे बुद्धिमान माता पिता बच्चों का निठल्ला बैठना पसन्द नहीं करते उसी तरह हमारी स्नेहमयी माँ भी अपने पुत्रों को चुपचाप शान्ति से बैठे नहीं देखना चाहती। यही तो हमारे साथ उसका दुलार है यही प्रेम है। निर्दयता नहीं है। हमारे हित ही के लिए उसने यह सारा प्रपंच रचा है। जीव को स्वतन्त्रता मिली है, पुरुषार्थ दिया गया है। अच्छे और बुरे समझने की शक्ति को उसे अर्पण किया है।, ऐसे अवसरों पर ही तो वह इन ताकतों का इस्तेमाल कर सकता है। इनसे परीक्षा भी होती है और उनमें तेजी भी आती है।

नेपाल के ऊपर तिब्बत के हिमाच्छादित देशों में पहले यह प्रथा थी कि शिशु का जन्म होने के बाद फौरन ही उन्हें बर्फीले ठण्डे जल के स्थानों में डाल देते थे, और थोड़ी देर पीछे निकाल लेते थे। कई उनमें मर भी जाते थे परन्तु जो रह जाते थे वह इतने मजबूत बन जाते थे कि बुढ़ापे तक बर्फ की ठण्डक का कोई असर उनके शरीर पर नहीं होता था। क्या इन पहाड़ी लोगों को अपनी सन्तान प्यारी नहीं थी? क्या वह निर्दयी थे? नहीं, इस संस्कार से उन्हें 'आइसप्रूफ' बनाना था। और सुनो यूरोप में स्वीट्जरलैण्ड एक देश है, वहाँ घड़ियों के बहुत से कारखाने हैं। वहाँ के कुछ मजदूर पेशा लोग अपने बच्चों को जन्म से ही अंधेरे मकानों में कैद कर देते हैं। सूरज, चाँद, सितारे, लैम्प और अग्नि यानी प्रकाश वाली कोई चीज उनके सम्मुख नहीं जाने पाती। बारह वर्ष तक ऐसे ही बन्द मकानों में उनका जीवन बीतता है। इसका लाभ उनको यह मिलता है कि उनकी आँखों में इतनी ताकत आ जाती है कि घड़ियों के छोटे-छोटे पुर्जे भी बिना खुर्दबीन के देख सकते हैं और बड़ी-बड़ी तनख्वाहों पर उनको नौकरी मिलती है। इसे उनके प्रति माता पिता का हित कहोगे या निर्दयता, ऐसे ही उसे समझो।

✦✦

सम्पादकीय

हमारे ऋषियों ने अनुभव कर अपने जीवन के सार को हमारे सामने रखा। यह अमूल्य जीवन कैसे जिया जाये। जीवन में अनेक समस्याएँ आती हैं उन्हें कैसे हल किया जाये। गीता में ही हम देखें कि कठिन से कठिन समस्याओं का समाधान कैसे हो? गीता के आठवें अध्याय में भगवान कृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं–

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्य संशयम्॥

गीता 8/7

हे अर्जुन! तू अपने मन और बुद्धि को मेरे को अर्पण कर, केवल निरन्तर मुझे स्मरण करता चल और सदैव युद्ध करता चल। निश्चय ही तुझे सफलता मिलेगी। इसमें कोई संशय मत कर।

अब हम इस पर विस्तार से विचार करें कि परिस्थितियाँ अर्जुन के सामने क्या हैं और समस्या क्या है? पांडव तथा कौरव दोनों ही भाई हैं साथ खेले, साथ पढ़े, लेकिन समस्या है कि कौरव, पाण्डवों का राज्य व सम्पत्ति में जो हक बनता है उसे नहीं देना चाहते। पाण्डव शान्तिप्रिय हैं, शान्तिपूर्ण समाधान चाहते हैं। अतः भगवान श्रीकृष्ण को शान्तिदूत बनाकर समझौता करना चाहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण भी शान्ति के पक्षधर हैं। अतः हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन को समझाने का प्रयास करते हैं। लेकिन दुर्योधन अनीति के मार्ग पर है। भगवान कृष्ण यहाँ तक कह देते हैं कि भाई आधा राज्य नहीं दे सकते तो पाण्डवों को पाँच गाँव ही दे दो। लेकिन दुर्योधन अहंकार में डूबा है। अतः कह देता है कि बिना युद्ध के सुई की नोंकभर भी भूमि नहीं दूँगा। अतः युद्ध अवश्यम्भावी हो जाता है।

युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये तीन बल आवश्यक होते हैं–(1) शारीरिक बल (2) बुद्धि बल तथा (3) आत्मबल। यह युद्ध पाण्डव और कौरवों में तो महाभारत के रूप में होगा ही लेकिन हमारे और आपके सभी के अन्तर में एक महाभारत हो रहा है। कौरव तथा पाण्डवों के महाभारत में एक ओर पाण्डव हैं जो सत्य पर चलते हैं, नीतिगत अपना भाग चाहते हैं। दूसरी ओर कौरव हैं जो अनीति के मार्ग पर हैं, आसुरी वृत्ति के प्रतीक हैं तथा पांडव दैवी वृत्ति के प्रतीक हैं। यह स्थूल में दैवीवृत्ति और आसुरी वृत्ति का संघर्ष है। हमारे अन्तर में भी आसुरी और दैवी वृत्तियों का यह महाभारत निरन्तर चलता रहता है। दैवीवृत्ति सदैव से निर्बल है आसुरी वृत्ति सबल है। अतः हम अपने में ही देखते हैं न चाहते हुए भी गलत कार्य कर जाते हैं।

युद्ध के लिए बल चाहिए। अतः अर्जुन और दुर्योधन दोनों भगवान कृष्ण जो उनके सम्बन्धी हैं के पास जाते हैं और सहायता के लिए प्रार्थना करते हैं। भगवान कृष्ण दोनों की सहायता के लिये कहते हैं कि भाई मैं आप दोनों की ही सहायता करूँगा। अतः एक ओर मेरी नारायणी सेना रहेगी, एक ओर मैं रहूँगा। मेरी सेना जिधर भी होगी प्राणपण से युद्ध करेगी, लेकिन मैं युद्ध में अस्त्र शस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा। युद्ध नहीं करूँगा। पहले अर्जुन तुम बोलो क्या चाहते हो? अर्जुन ने कहा प्रभु! मैं तो केवल मात्र आपको चाहता हूँ। मुझे नारायणी सेना नहीं चाहिए। भगवान कृष्ण योगेश्वर हैं, पूर्ण समर्थ हैं, समर्थ गुरु हैं, जगत की आत्मा हैं। यदि आत्म जागरण हो जाये तो शारीरिक बौद्धिक बल स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। हमारे और आपके अन्दर भी महाभारत हो रहा है, दैवी वृत्तियों को सबल करने के लिये हमें भी आत्मा का ही वरण करना होगा। आत्मा में ही समर्थ गुरु शक्ति रूप में विराजता है। अतः जीवन में सफलता के लिये हमें भी आत्मा से योग करना होगा। गीता का संदेश है—

योगस्थः कुरु कर्माणि, सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।

—गीता 2/48

आवश्यक है प्रकृति का संग छोड़कर आत्मा से योग कर सभी कर्म करें। आत्मा के योग से हमें शारीरिक तथा बौद्धिक बल भी प्राप्त होगा। कार्य में पूर्णता आ जायेगी।

अहम प्रश्न यह है कि प्रकृति में ही हमारा जन्म हुआ है प्रकृति में नित्य व्यवहार करते हैं फिर इस प्रकृति के संग को छोड़ा कैसे जाये? आत्मा को देखा नहीं फिर उससे योग कैसे हो? सन्तों ने कहा भाई पहले आपमें उस मार्ग पर चलने की इच्छा हो। यदि आपमें बलवती इच्छा है तो अवश्य ऐसे महापुरुष के सम्पर्क में आप आवेंगे जो आपको इस मार्ग पर ले जायेंगे। लेकिन प्रश्न यह भी है कि हमारे सम्पर्क में बहुत से व्यक्ति आते हैं। हम कैसे पहचानें? सन्त की पहचान न जाति से होती है, न रूप से, न ज्ञान से, न हमारी आंखें पहचान सकती हैं, न हमारी बुद्धि केवल आत्मा ही सन्त की पहचान कर सकती है। कबीर साहब की आत्मा ही स्वामी रामानन्द को पहचान पायी तथा परमज्ञानी रामानुजाचार्य की आत्मा ने एक सूप बनाने वाले यवनाचार्य को पहचाना। जिस व्यक्ति के पास बैठने पर शान्ति की अनुभूति हो, मन की हरकत शान्त होती जाये, उसी महापुरुष से मुझे जीवन का मार्ग मिलेगा। इस मार्ग पर चलने का सबसे प्रमुख साधन श्रद्धा और विश्वास है। वह हमारे पास कभी नहीं होते। अध्यात्म मार्ग के संबल हैं श्रद्धा और विश्वास। मन्दिर में बनी मूर्ति पर श्रद्धा ला सकते हैं लेकिन किसी जीवित पुरुष पर श्रद्धा लाना असम्भव सा ही है। गुरु महाराज ने कहा कि श्रद्धा लाना तुम्हारे वश में नहीं मैं ही तुम्हारे हृदय में श्रद्धा का संचार करूँगा। गुरु हमारे हृदय में प्रवेश कर श्रद्धा पर आये अश्रद्धा के आवरण को हटा कर अपनी कृपा की अनुभूति कराते हैं। भगवान कृष्ण भी अपने विराट स्वरूप की अनुभूति करा कर ही अर्जुन के मन में श्रद्धा उत्पन्न करते हैं। शिष्य का

अर्थ केवल ज्ञान के लिए किसी की शरण जाना नहीं है बल्कि गुरु से प्रार्थना करना कि आप मुझ पर शासन करें। साम, दाम, दण्ड-भेद अपना कर मुझे ज्ञान प्रदान करें। जब तक शिष्य के हृदय में गुरु के प्रति भय नहीं होता वह ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। भय और प्रेम दोनों ही आवश्यक हैं। गीता में भगवान कृष्ण ने विराट स्वरूप दिखाकर उसके भ्रम कि कृष्ण तो मेरे सखा हैं, मेरे सारथी हैं को तोड़ते हुऐ उसे भयभीत कर दिया। वह कहने लगा कि मैंने देख लिया आप तो पूर्ण परमात्मा हैं, पिता के पिता, गुरु के गुरु हैं। आप कृपा करके इस स्वरूप को त्याग कर अपने मानुषी रूप में आवें। हमारे गुरु महाराज की शैली भिन्न थी। गुरु में दया और वत्सलता दोनों ही होते हैं। गुरु मातृरूपेण हैं। अत: जैसे मां शिशु को सहलाती रहती है और वह सो जाता है। ऐसे ही गुरु महाराज ने कहा कि आप चाहे कितने भी पापी हैं, दुराचारी हैं, मन अशान्त रहता है, आपका काम तो केवल मेरे सामने बैठ जाना है। गुरु का काम है आपके मन में प्रवेश कर अशान्त मन को सहलाकर शान्त करना, तथा उस शान्त मन में आत्मानुभूति का आनन्द प्राप्त करा कर श्रद्धा और विश्वास प्रकट करना तथा जैसे शिशु निढाल होकर मां की गोद में निद्रा में चला गया। अपना सारा दु:ख भूलकर निद्रा के आनन्द में खो गया। इसी प्रकार साधक भी उस आत्मानन्द में निमग्न होकर गुरु के चरणों में अपने को सौंप देता है तथा गुरु उसे पूर्ण कर जीवन का श्रेयस प्रदान करा देते हैं।

✦✦

भाव का फल

जिस भाव से पूजा की जाती है वैसा ही फल भी मिलता है। यदि कोई मन्दिर में भगवान की मूर्ति समझकर पूजा करता है तो उसे वैसा ही लाभ होता है और साक्षात परमात्मा समझकर पूजा करता है तो उसे वैसा लाभ मिलता है। इसी प्रकार जो—गुरु से मनुष्य समझकर मिलते हैं उन्हें मनुष्य जैसा लाभ और महापुरुष समझकर मिलते हैं तो महापुरुष जैसा लाभ और आगे जब ईश्वर समझकर उसके सामने जाते हैं तो ईश्वर दर्शन का पूरा लाभ प्राप्त होता है। अतएव मनुष्य को परमात्मा से अपनी भावना पवित्र करने की प्रार्थना करनी चाहिए।

गुरु तम्हारा भाव देखता है उसे तुम्हारे धन, वस्त्र, मीठी बातों की आवश्यकता नहीं है। जब तुम खाली होकर उसके सामने बैठोगे तो वह अपनी चीज तुम्हारे अन्दर डाल देगा। अत: सांसारिक वस्तुओं से उसे रिझाने का प्रयत्न मत करो—मन को खाली करने की कोशिश करो।

— नवनीत हृदय परम संत
डा० बृजेन्द्र कुमार जी

प्रवचन पराग–

मनुष्य का धर्म

– परम भागवत परमसंत पं० मिहीलाल जी

वेदों में परमात्मा ने बताया है कि हे मनुष्य मैंने तुम्हें पशुओं से ऊँचा बनाया है, मैंने तुम्हें पक्षियों से ऊपर बनाया है, मैंने तुम्हें और भी जीव जन्तुओं से श्रेष्ठ बनाया है। यह इसलिए नहीं बनाया कि तुम मुझे भूलकर इन चीजों में फंस जाओ, बल्कि मैंने तुमको अपने प्रेम के लिए बनाया है। मुझे भी प्रेम चाहिए इस वास्ते तुम्हें प्रेम के लिए बनाया है। जैसे पिता खूब सम्पत्ति वाला हो मगर पुत्र उसे प्रेम न करता हो तो उसका जीवन सफल नहीं होता, उसे शान्ति नहीं मिलती। ऐसे ही हमारा जो पिता है परमात्मा, वह अन्नत है। उसके पास किसी वस्तु की कमी नहीं है लेकिन यदि हमारा उससे प्रेम नहीं है तो वही प्रसन्न नहीं होता। उसने यह भी बतलाया कि मेरे ज्ञान को प्राप्त करने के लिए तुम मेरी उपासना करो। कुछ देर मेरे पास बैठो। मैं चाहता हूँ कि तुम संसार में मेरा ज्ञान दूसरों को दो, क्योंकि कुछ मनुष्य मुझे भूल चुके हैं, वे लोग दुःख पाते हैं। इसलिए तुम्हारा कर्त्तव्य यह होगा कि तुम सबके साथ प्रेम करते हुए, अच्छा व्यवहार करते हुए सबको मेरी तरफ लाओ और दूसरी बात उन्होंने यह कही थी कि देखो, सब पर दया करना, ये सभी मेरे ही पुत्र हैं। कोई तुम्हें कठोर शब्द कहेगा तब भी तुम उसे बर्दाश्त करना क्योंकि ये तुमसे छोटे हैं और तीसरी बात उन्होंने यह बतलाई थी कि भाई तुम सब किसी को प्रेम की दृष्टि से देखते हुए किसी से घृणा मत करना।

सबसे अगर कोई बुरी चीज है तो वह मनुष्य के लिए है घृणा। परमात्मा यदि किसी से अप्रसन्न होता है तो वह उसी से होता है जो दूसरों से घृणा करता है क्योंकि वह जानता नहीं कि सब में ईश्वर है और साथ ही साथ वह अपने को बड़ा समझता है, अपने को पवित्र समझता है। लेकिन अगर कोई अपने को बड़ा और पवित्र समझता है तो उसे चाहिए कि वह परमात्मा के पास बैठे व उसमें डूब जाये क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य में जो ज्ञान दिया है, वह उसके अन्दर है। वह चाहता है कि संसार में जैसा मैं हूँ उसी प्रकार सभी को सुख पहुँचे, शान्ति पहुँचे। जो मनुष्य उस ईश्वर की उपासना करते हैं और उसकी समीपता करते हैं उनको परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होता है और उस ज्ञान से वो सारी सृष्टि को सुखी और प्रसन्न रखते हैं। यों तो हर मनुष्य अपना जन्म पाकर जीवन व्यतीत कर ही लेता है। लेकिन मनुष्य जन्म पाकर यदि उसने परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके संसार में भ्रमण किया, संसार में शान्ति से अपना जीवन व्यतीत किया तो वह मनुष्य धन्य कहलाता है। वह स्वयं कष्ट सहता हुआ दूसरों के

कष्टों को दूर करता रहता है और उस दूसरे को, जिस पर वह कृपा करता है, अपने कष्ट का पता भी नहीं लगने देता है। ऐसे वे महान पुरुष होते हैं। स्वयं दु:खों में फंसे हुए वे दूसरों को दु:खों से बचाते रहते हैं, वे वास्तव में परमात्मा के स्वरूप होते हैं।

एक बहुत पुरानी बात है कि एक मन्दिर में बहुत से लोग जाया करते थे। दूर-दूर देशों के मनुष्य भी उसमें आते थे। वहाँ का पुजारी जो था वह बहुत ही ज्ञानवान था, समझदार था और वह ईश्वर से मिला हुआ था। पीछे से वह कहा करता था कि फलाँ की सेवा स्वीकार हुई। ऐसी प्रेरणा उसको अन्तर से होती थी।

एक बार बहुत बड़ा मेला लगा। बहुत से दर्शनार्थी वहाँ जमा हुए। पीछे से जब वह खड़े होकर कहने लगे और नाम बतलाया कि फलाँ भक्त की सेवा स्वीकार हुई, ईश्वर उससे प्रसन्न है। लोगों ने उस आदमी को बहुत तलाश किया मगर वह वहाँ था नहीं। बहुत तलाश किया लोगों ने एक दूसरे से पूछा भाई! वह भक्त कौन सा है। जिस पर ईश्वर प्रसन्न हुआ और उसकी सेवा स्वीकार हुई है। बहुत तलाशा गया लेकिन नहीं मिला। वहाँ उसका पूरा नाम बताते थे, स्थान बताते थे, तो बहुत से लोग उसके स्थान पर चल दिये कि उसका दर्शन करें। वह ऐसा है कि उसे ईश्वर ने स्वीकार किया है। उसके घर गये और उससे पूछा कि महाराज आपने कैसे सेवा की थी ईश्वर की। क्या उसके लिए आप करते थे? क्यों वे प्रसन्न हुए? जरा हमें भी तो बतलाइये। वह बहुत गरीब आदमी था, दिन भर मजदूरी करके अपने घर वालों का पेट भरता था। वह बड़ा दु:खी हुआ, कहने लगा, मैंने तो कोई सेवा नहीं की और मैं तो उनके दर्शन के लिए भी नहीं गया। उन लोगों ने फिर पूछा कि कुछ तो बताईये। वह कहने लगा "क्या बताऊँ"! मैंने निश्चय किया था कि पन्द्रह दिनों की मजदूरी जो मिलेगी उसी से वहाँ दर्शनों को जाऊँगा। वह मजदूरी जो थी उसे मैंने इकट्ठी की लेकिन एक आदमी जिसे किसी कर्जदार ने बन्धन में डाल रखा था और उसे वह बड़ा तंग कर रहा था किसी तरह से चैन नहीं लेने देता था, उसे अपशब्द कहता था। मुझे उसकी दशा पर दया आ गई और मैंने वह रुपया उसे दे दिया। उसने कर्जदार को चुकता कर दिया और वह कर्ज से मुक्त हो गया। मुझे उसी दिन रात्रि में ऐसा स्वप्न भी हुआ था कि परमात्मा कह रहे हैं कि हमें तेरी सेवा स्वीकार है। तूने संसार के एक प्राणी को मुक्त किया, मैं तुझे संसार से मुक्त करता हूँ। मैं तुझे इस भवसागर से मुक्त करता हूँ।

हमारी समझ में नहीं आता कि हम क्या करें। धन इकट्ठा करना चाहिए किसलिये? क्या मौत कभी सामने नहीं आयेगी? यह संसार का बन्धन हम पाले हुए हैं किसलिए? क्या संसार से हमें नहीं जाना है? इसलिए बुद्धिमान मनुष्य वह कहलाते हैं जो अपना भला जानते हैं। जिनको ससांर में यह पता है कि मेरा भला किसमें है, मेरा हित किसमें है? समझलो, वह मनुष्य वास्तव में समझदार है। बहुत-सा वैभव आपको आ जाये, सम्भव है। बहुत बड़े राष्ट्र के आप मालिक भी

हो जायें और लोग चारों तरफ से घेर कर उस चीज को आपको दें भी, लेकिन ऐसे समय में अगर कोई उस परमात्मा को वह सब न्योछावर करता है। तो कितना उत्तम है। यह जीवन, ऐसा जीवन, भरत का जीवन हमने देखा। माता की आज्ञा, पिता की आज्ञा, माता कौशल्या की आज्ञा, गुरु की आज्ञा लेकिन एक त्यागी पुरुष कहता है

हित हमार सियपति सेवकाई।
सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥

अयोध्याकाण्ड ॥177॥1

मेरा हित जो था, वह तो भगवान की सेवा में था।

अहह दैव मैं कत जग जायउँ।
प्रभु के एकहु काज न आयउँ॥

लंकाकाण्ड ॥ 59 ॥2

जीवन वैसे ही चला गया। मेरी बजह से दुःख पाया सभी लोगों ने, मेरी बजह से किसी को सुख की प्राप्ति नहीं हुई, ऐसे जीवन को लेकर के हम क्या करेंगे।

अहह धन्य लक्ष्मिन बड़भागी।
राम पदारबिन्दु अनुरागी॥

उत्तरकाण्ड।।2।।

लक्ष्मण मुझ से हजार दर्जे अच्छे हैं, कितने अच्छे हैं कि भगवान के चरणों के सेवक हैं।

जीवन को पवित्र बनाने की कोशिश करो। इसमें सब सम्पत्ति बटोर कर, यदि हम उस पर अपना अधिकार करके उसी में थक जायेंगे फिर निकलने का उसमें से कहीं रास्ता नहीं रह जायेगा। इसलिए बार-बार उस परमात्मा को याद करो। जो काम करो त्याग की भावना से करो। अगर अपने जीवन में तुम एक को भी ऐसा त्याग दोगे तो परमात्मा तुम्हें उससे हजार गुना उसका लाभ देगा। इन चीजों से जीवन पवित्र होता है। ऐसे संतों के दर्शनों से जीवन पवित्र हो जाता है। क्योंकि वे परमात्मा स्वरूप हो जाते हैं। जो ईश्वर की शक्ति उपासना करते हैं। ईश्वर का गुण उसमें प्रवेश हो जाता है। इसीलिए उन संतों को हम ईश्वर कहते हैं।

अरे! बड़ा भारी यह सौभाग्य समझिए कि कहीं ईश्वर हमें मनुष्य के रूप में प्राप्त हो जाय। अरे! वैसे तो हम उसमें दिन रात ढूँढ़ते ही हैं दिन-रात घूमते ही हैं। उसी ईश्वर के लिए तो हम घूम रहे हैं लेकिन भाग्यशाली वे हैं जिनके सामने कभी ईश्वर आ जायँ। ऐसा ईश्वर जब आता है तब दिशायें साफ हो जाती हैं। मनुष्यों के हृदय वहाँ बैठे-बैठे पवित्र हो जाते हैं। उनकी वाणी से उनका हृदय तृप्त हो जाता है जो संसार की किसी चीज से तृप्त नहीं होता। समझो कि यदि वह चीज है तो वास्तव में यह ईश्वर के स्वरूप में बैठे हैं।

ऐसे सत्पुरुषों से देश धन्य होता है, ऐसे सत्पुरुषों से सारा विश्व धन्य होता है, ऐसे सत्पुरुषों से नरक जो है वह स्वर्ग बन जाता है। है क्या! अरे जरा-सी ही तो बात थी युधिष्ठिर नरक में बैठे थे। वहाँ स्वर्ग हो गया था। क्या यह हम नहीं जानते? जब सत्पुरुष नरक में भी बैठ जाते हैं तो वहाँ स्वर्ग बन जाता है। इनमें ये चीज

होती है। ऐसे संतों का कब प्रादुर्भाव होता है? वह तभी होता है। जब मनुष्यों के ह्रदय जल उठते हैं। कहीं ठिकाना नहीं लगता। दुनिया की तरफ देखता है तो दुनिया उसे खाने के लिए दौड़ती है। अपनी रक्षा के लिए कभी राजा की ओर देखता है तो वह राजा उसको और ज्यादा खाने के लिए दौड़ता है। यह हालत है।

पानी बरसे तृण जले, बाड़ि खेत को खाय।
राजा हो चोरी करे, न्याय कौन घर जाय॥

जब ऐसी दशा हो जाती है "**पानी बरसे तृण जलें**" क्या ऐसा पानी बरसे कि जो फसल होने वाली है वही जल जाय। "**बाड़ि खेत को खाय**" रक्षा के लिए जो बाड़ि लगा रखी है वही खेत को खा जाये। राजा इसलिये था कि अपना सब कुछ प्रजा को दे वही प्रजा की चोरी करने लग जाये! फिर वह न्याय के लिए कहाँ जाय। किससे कहे? आज का समय बहुत कुछ ऐसा ही है फिर भी संसार न संतों से खाली है न महापुरुषों से। हम उठें, जागें और अपने मूल धर्म को जानें। उन संतों को पहिचानें, ज्ञान व प्रेम को अपने व्यवहार में उतारें। यही सत्य, ज्ञान, प्रेम से भरा हुआ सद्व्यवहार ही मनुष्य का धर्म है। ✦✦

सन्देश

- गृहस्थी रक्खो, भोग विलास सब करो पर उसमें लिप्त न होओ। ममत्व न आने पावे। एक अतिथि की तरह तुम्हारी जीवन यात्रा चलै। अतिथि-मेहमान को कहते हैं। समझते रहो कि इस घर का मालिक कोई दूसरा है। मैं मेहमान की तरह यहाँ रह रहा हूँ और एक न एक दिन मुझे यहाँ से विदा होना है। ऐसा भाव बना लेना ही वैराग्य है।
- अभ्यास के साथ वैराग्य का होना भी लाजिमी है। अभ्यास और वैराग्य परमार्थ की गाड़ी के दो पहिये हैं, जिनके द्वारा ही यह गाड़ी आगे बढ़ती है। एक पहिया गाड़ी को नहीं खींच सकता। इसी तरह केवल अभ्यास भी जिज्ञासु को आगे नहीं ले जा सकता, उसकी सहायता के लिए वैराग्य होना जरूरी है।
- जिस तरह अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है, वैसे ही अभ्यास के साथ-साथ क्रमशः वैराग्य को भी बढ़ाना होता है। एकदम कोई मनुष्य वैरागी नहीं बन सकता। अभ्यास कर लेना सहज है पर वैराग्य में बड़ी कठिनाइयों का सामना आता है। अनेक अवसरों पर इसका साधक पतित होने लगता है, उस समय किसी महापुरुष के सहारे की आवश्यकता होती है। इसलिये अभ्यास के लिए नहीं, मगर वैराग्य के लिए सत्संग करना लाजिमी है।

— परमपूज्य गुरुदेव

सुधा–सार :–

असली सुख और शान्ति हेतु

— प्रेममूर्ति परम संत डा० नरेन्द्र कुमार जी

हमारे तीन शरीर हैं। अगर हम पूर्ण शान्ति और आनन्द चाहते हैं तो हमें तीनों शरीरों को निर्मल करना होगा। अत: जब कर्मयोग से स्थूल शरीर और इन्द्रियाँ शान्त या निर्मल हो जायँगी तब सूक्ष्म शरीर को निर्मल करने की क्रिया प्रारम्भ होगी। सूक्ष्म शरीर को निर्मल बनाने की जो क्रिया है उसको उपासना कहते हैं। उपासना निराकार ब्रह्म की भी होती है और साकार की भी। जब साकार की होती है तो उसको भक्ति कहते हैं और जब निराकार की होती है तो केवल उपासना ही कहलाती है।

उपासना की इस क्रिया में हर साधक की तीन स्थितियाँ आती हैं। प्रथम स्थिति में साधक गुरु के प्रकाश या शक्ति को अपने अन्दर देखता है, और उसमें अपने को लय करने की कोशिश करता है। उस समय उसका मन शान्त होने लगता है और उसको आनन्द का अनुभव होता है।

जब मन शान्त हो जाता है। तब साधक दूसरी स्थिति में प्रवेश करता है जिसमें गुरु या परमात्मा की शक्ति दूसरा कार्य प्रारम्भ करती है। यह कार्य है मन की सफाई करना अर्थात् सूक्ष्म शरीर की सफाई करना। सूक्ष्म शरीर में जो गन्दगी है वह साधक के कर्मों के फल हैं उनसे उत्पन्न संस्कार हैं। इन संस्कारों की जब सफाई प्रारम्भ होती है तो साधक को अपने संस्कारों की गन्दगी विचारों के रूप में दिखाई देने लगती है। उससे उसका मन फिर चलायमान दिखाई देने लगता है। स्वप्न की तरह मन में विचार आने लगते हैं। किन्तु वास्तव में यह मन की निर्मलता का संकेत है।

यहाँ पर मन की असली सफाई शुरू होती है। सूक्ष्म शरीर को निर्मल बनाने का कार्य प्रारम्भ होता है। जब यह कार्य समाप्त हो जायगा तभी मन पूर्ण शान्त और निर्मल बनेगा। इसमें काफी समय लगता है। हमारे जन्म जन्मान्तरों के जो संस्कार हैं वे सूक्ष्म शरीर में विद्यमान रहते हैं। इसलिए उनको नष्ट करके मन को निर्मल बनाने के लिए बहुत कुछ समय की आवश्यकता होती है। सूक्ष्म शरीर की पूर्ण सफाई होने पर ही साधक का मन पूर्ण स्थिर, शान्त और निर्मल होता है। पूर्ण स्थिर, शान्त और निर्मल मन की स्थूल अवस्था साधक की तीसरी स्थिति है।

अब तीसरे शरीर, कारण शरीर का नम्बर आता है। यहाँ पर केवल बुद्धि ही कार्य करती है। वास्तव में साधना प्रथम दो शरीरों अर्थात् स्थूल और सूक्ष्म शरीरों को साफ करने के लिए ही होती है। क्योंकि मन जब स्थिर, शान्त और निर्मल हो जाता है तब साधक की साधना समाप्त हो जाती है। इसलिए कारण शरीर को साफ करने के लिए कोई साधना नहीं करनी पड़ती। बुद्धि अपने आप परमात्मा का ज्ञान धीरे-धीरे अर्जित

करती जाती है। लेकिन जब ज्ञान आता है तो अहंकार भी साथ-साथ अवश्य आता है। बुद्धि को निर्मल बनाने में अंहकार ही सबसे बड़ी रुकावट है। अतः बुद्धि को अगर हम निर्मल बनाना चाहते हैं तो अंहकार को हमें गुरु के चरणों में समर्पित करना होगा और तभी कारण शरीर निर्मल बन सकेगा।

जब तीनों शरीर निर्मल हो जाते हैं तभी परमात्मा की प्राप्ति होती है, तभी असली सुःख और शान्ति प्राप्त होती है। ✦✦

आत्म ज्ञान

संसार की प्रत्येक वस्तु उत्पन्न होकर कुछ समय के लिए स्थिति में आकर अवश्य विनाश को प्राप्त होगी। यह समझ आने पर ही मनुष्य आत्म ज्ञान को प्राप्त करने के लिये तैयार होता है जिसके बिना उसका जीवन अपूर्ण और निरानन्द दिखाई देता है। सब जानते हैं कि वह वस्तु भगवान के चरण ही हैं जिनके बिना हम क्लेश पर क्लेश उठा रहे हैं।

ऐसा विचार कर जो साधना में लगता है वह स्वभावतः संसार और संसार की वस्तुओं, विभूतियों से उदासीन हो जाता है। साधना पथ पर आरूढ़ होकर पुनः क्षणभंगुर वस्तुओं की लालसा ले आना मूर्खता ही है। जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए हम चले थे उसके अतिरिक्त हम कोई भी विचार मन में न आने दें, यह हमारा व्रत होना चाहिए। ज्ञान का मार्ग कठिन है गिरते देर नहीं लगती। इसलिए हमारी बुद्धिमानी इसी में है कि उन चरणों के अलावा किसी वस्तु का ध्यान अपने अन्दर न आने दें।

दूसरी बात साधक को यह समझ लेनी चाहिए कि यह संसार क्षण भंगुर होते हुए भी उसी परमेश्वर का है, इनमें जो कुछ सौन्दर्य दिखाई देता है वह उसी के मंजुल रूप की छाया है। इन अनेकानेक झरोखों के बीच वही झाँक रहा है। इसलिये साधक को किसी भी वस्तु से घृणा अथवा किसी भी वस्तु से राग नहीं करना चाहिए। राग द्वेष से परे होकर जो परमात्मा के सच्चे स्वरूप को पहचानने की कोशिश करता है, वह सच्चा साधक है। उसी को उसके दर्शन मिलते हैं।

सच्चे साधक का धर्म प्रेम का धर्म है, मुहब्बत मज़हब है। संसार की प्रत्येक वस्तु से, प्रत्येक प्राणी से वह प्रेम करता है क्योंकि सबके अन्दर वह उसी प्यारे की सूरत को देखता है। जिसकी दृष्टि में भेदभाव समाया हुआ है, उसे अपना मार्ग खोटा समझना चाहिए। यदि साधक में अभेद दृष्टि पैदा नहीं होती तो वर्षों का अभ्यास और तप बेकार है। जो कुछ ही वस्तुओं में ईश्वर को देखता है और दूसरी से घृणा करता है वह ईश्वरीय ज्ञान के रहस्य को नहीं समझता। कहा तो यह गया है कि दुश्मन भी सामने आ जाये तो उसमें अपना मित्र ही नजर आना चाहिए।

— परम संत बाबू मन मोहन लाल जी

बिनु सतसंग विवेक न होई

— श्रीयुत् प्रभुदयाल शर्मा

"बिनु सतसंग बिबेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥"

रा.च.मा. 1/2/7

सत्संग का अर्थ है कि अपना जाना हुआ असत् निकल जाय। सबसे बड़ा असत् जो जीवन में ठहरा हुआ है वह है शरीर की ममता-ममत्व, सत्संग भटकाव से उबारने की विद्या का नाम है। सत्संग उस दूरदर्शिता का नाम है जिसे व्यक्ति अपने में उतार ले तो उसका देवत्व की ओर आगमन का पथ कंटक विहीन होता चला जाता है। सत्संग ही मानव को संकीर्णता की पगडंडी से निकालकर उदार परमार्थ के चौड़े राजमार्ग पर ले जाने वाली ऐसी प्रक्रिया है जो देखते-देखते ही व्यक्ति का आमूल चूल कायाकल्प कर देता है। मननशीलता मनुष्य का गुण है तथा श्रेष्ठत्व की ओर अग्रसर होना उसकी प्रकृति। सु-भाव ही मनुष्य का स्वभाव है। ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है। श्री डिज़रायली जैसे दार्शनिक लिखते हैं—"मनुष्य सृष्टिकर्ता के प्रतिबिम्ब में ईश्वर-तुल्य कार्य के लिए बनाया गया है। इस कार्य के सम्पादन के लिये ही वह आत्मा विवेक और बुद्धि को लेकर आया है।" एक संत लिखते हैं कि मनुष्य चावल (धान) के समान है, यदि उसके ऊपर के छिलके को उतार दिया जाय तो वह अंकुरित नहीं होगा। ऐसे ही मानव पर अज्ञान (अविवेक) रूपी शरीर का छिलका है यदि उसे गुरु कृपा से उतार ले तो फिर आवागमन रूपी चक्र से निजात मिल सकती है। वस्तुतः इस अज्ञान रूपी अंधकार में अंधे हुये मानव की आँखें गुरु ही अपनी उस ज्ञानांजन रूपी शलाका से उन्मीलित करने में समर्थ है। "गुरु को मानुस मानते ते नर कहिये अंध"-कबीर साहब।

"गुर विवेक सागर जगुजाना।
जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना॥"

रा.च.मा. 2/181/1

मानव मात्र के समक्ष दो ही आश्रय हैं—ममता और ममता शून्यता। ममता से प्राणी बन्धन में आबद्ध होता है और ममता रहित होने पर मुक्त हो सकता है। सच्चे अर्थ में मनुष्य वही है जिसे अपने मन का होश है। अर्थात् अपने लक्ष्य का बोध हो गया है इस मानव शरीर को प्राप्त कर ही अपने लक्ष्य उस परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है, परमात्मा का हुआ जा सकता है, सत्संग और महापुरुषों की अहेतुकी कृपा से ही यह बोध हो पाता है कि मैं इन्द्रियाँ नहीं, मैं हाथ नहीं, पाँव नहीं, मैं इन सबसे पृथक हूँ, आत्मस्वरूप हूँ तभी बेड़ा पार हो पाता है। इन भव व्याधियों से छुटकारा गुरु की असीम

अनुकम्पा से ही हो पाता है। **मूकं करोति वाचालम् बहिरो सुनै मूक पुनि बोले, पंगु चढ़इ गिरिबर गहन,** आदि कथन मात्र ही नहीं, अनुभूति परक हैं। गुरु प्रदत्त साधना के फलीभूत होने पर यह विश्वास दृढ़ हुए बिना नहीं रहता कि इस जीवन के आगे कोई और जीवन भी है। इन चर्म चक्षुओं के आगे कोई और चक्षु भी हैं। इन सब से आगे, परे है वह दिव्य जीवन, वह है आत्मा का स्थान जहाँ परम शान्ति का अगाध समुद्र लहरा रहा है। यही तो आत्म तत्व है जो सच्चिदानन्द स्वरूप है। '**सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम्**'-

मज्जन फल पेखिअ ततकाला।
काक होहिं पिक बकहु मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई।
सतसंगति महिमा नहिं गोई॥
बालमीक नारद घटजोनी।
निज निज मुखनि कही निज होनी॥

रा.च.मा. 1/2/1-3

बाल्मीकि, नारद, अगस्त्य आदि ऋषियों ने अपनी-अपनी स्थिति का वर्णन किया है कि वे कहाँ से कहाँ पहुँचने में समर्थ हुये। उसके विषय में भी यही है।

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग।।

रा.च.मा. 7/61

विवेक क्या है, कैसे प्राप्त हो पाता है? वस्तुतः मानव शरीर की महिमा विवेक के कारण ही है। यों तो अल्प ज्ञान प्राणिमात्र में है परन्तु जिससे परमात्म तत्व की प्राप्ति हो पाये ऐसा ज्ञान (विवेक) मनुष्य को ही प्राप्त है। ऐसा विवेक जिससे सत्-असत्, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, अच्छा-बुरा आदि की अनुभूति मनुष्य को ही भगवान ने प्रदान की है, यह विवेक कर्मों का फल नहीं प्रत्युत गुरु प्रदत्त है। यह गुरु कृपा से बुद्धि में आता है परन्तु बुद्धि का गुण नहीं है। यदि विवेक को पुण्य कर्मों का फल मानें तो यह शंका पैदा होती है कि बिना विवेक के पुण्य कर्म कैसे हुये? कारण कि यह पुण्य कर्म हैं और ये पाप कर्म हैं ऐसा विवेक पहले होने पर ही मनुष्य पाप कर्मों को त्याग कर पुण्य कर्मों की ओर अग्रसर होता है। अतः विवेक पुण्य कर्मों का फल नहीं है प्रत्युत पुण्य कर्मों का कारण और अनादि है, विवेक बिना केवल क्रिया से अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती, वह शक्ति विवेक में है कर्त्ता में नहीं। विवेक जिज्ञासु के अन्तर में सत्संग और दुःख से जाग्रत होता है। सत्संग परमात्मा में लगाता है और दुःख संसार से हटाता है। उस परमात्मा में लगना ही योग है—सिद्धय सिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते। (गीता 2/48) और संसार से विमुख होना भी योग ही है—"तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम् (गीता 6/23) अर्थात् जो दुःख रूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिए।

वस्तुतः संसार की एक चाल है कि वह विश्वासघात करता है परन्तु उससे विश्वासघात होता है करता नहीं है। कारण कि मनुष्य संसार

को सुखदायी समझकर उसकी ओर आकृष्ट होता है पर अन्ततोगत्वा वह दु:खदायी ही सिद्ध होता है, तब मनुष्य के हृदय में विचार आता है कि 'संसार में मेरा कोई नहीं है' ऐसा विचार ही मनुष्य को साधना में लगा देता है। साधक का विवेक जाग्रत हो उठता है। महापुरुष कहते हैं दु:ख आने पर सुख की इच्छा का त्याग करना चाहिए और दु:ख के कारण की खोज करनी चाहिए इससे भी विवेक जाग्रत हो जाता है।

शोक-चिन्ता, भय-उद्वेग, राग-द्वेष, हर्ष-शोक, ये सब आने जाने वाले हैं और अनित्य हैं–'**आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत**' (गीता 2/14) अर्थात् हे कुन्ती पुत्र! सर्दी गर्मी और सुख-दु:ख को देने वाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य हैं, इसलिये उनको तू सहन कर, उनके साथ मिलो मत, सुख भी आने जाने वाला है और दु:ख भी परन्तु आप इन आने जाने वालों को जानने वाले हैं। आप सहज सुख की राशि हैं सुषुप्ति में कोई दु:ख नहीं रहता। आप रुपयों के बिना रह सकते हैं, सांसारिक भोगों के बिना रह सकते हैं पर नींद के बिना नहीं रह सकते। नींद में संसार के अभाव का सुख मिलता है। यदि जाग्रतावस्था में संसार के अभाव का सुख-ज्ञान हो जाय तो जाग्रत दशा में ही दु:ख मिट जायें और परमात्मा में स्थिति हो जाय, इसी को मुक्तावस्था कहते हैं। दु:ख तो संसार के सम्बन्ध में हैं। इससे उबरने के लिये नई बातें जानें, जानने की गति में विकास करें। जो रूढ़िवादी हैं उन्होंने तो नई बातें जानने के लिए अपने दरबाजे खिड़कियाँ बन्द की हुई हैं, उनके आगे किसी भी प्रकार की प्रगति का अवकाश नहीं है। दरबाजे कभी बन्द मत करो, हवा का एक झोंका तुम्हें नई ताज़गी और ऊर्जा से भर देगा। अपने जीवन को नये सिरे से देखें, इससे जीवन के बारे में बहुत कुछ जान सकेंगे। जानने और समझने की यह प्रक्रिया जीवन में आत्मविश्वास जगाती है। जिस ज्ञान के द्वारा आत्म वस्तु और अनात्म वस्तु जानी जाय वही तो अध्यात्म ज्ञान है। जीवात्मा शरीर की आसक्ति में डूबा हुआ असमर्थता रूप दीनता का अनुभव करता हुआ शोक करता रहता है। जब कभी उस परमात्मा की कृपा होती है तभी किसी आप्त पुरुष अथवा भक्त के द्वारा बतलाये उपाय द्वारा अपने से भिन्न उस परमात्मा को प्राप्त कर लेता है, और तब वह सर्वथा शोक रहित हो जाता है। परमसमर्थ गुरु महाराज की वाणी के संकेत देखें–'गुरु मुख से नहीं हृदय से हृदय को ज्ञान देता है, परन्तु गुरु भी अनुभवी होना चाहिए जो स्वयं ही नहीं जानते वे दूसरों को क्या बता सकते हैं, सौभाग्य से किसी को ऐसा तत्वज्ञानी पूर्ण गुरु मिल जाय तो देर भी नहीं लगती। वस्तुत: वह अंतर में ही है–

'दिल ही में दीदार है बादि बकै संसार।
सतगुरु दर्पन शब्द का रूप दिखावन हार॥'

अर्जुन जैसे भक्त साक्षात् भगवान् के समक्ष हैं फिर भी उन्हें जानने की प्रबल जिज्ञासा बनी हुई है। भगवान के समक्ष अपनी प्रबल जिज्ञासा जताते हुये प्रार्थना करते हैं कि आपके उस

तेजोमय भव्य स्वरूप को मैं प्रत्यक्ष देखने की अभिलाषा रखता हूँ। यदि मेरे द्वारा आपका वह स्वरूप देखा जाना शक्य है तो हे योगेश्वर! आप मुझे उस स्वरूप का दर्शन कराइये—भगवान् भक्त पर कृपा करते हैं परन्तु साथ ही कहते हैं—हे अर्जुन! मुझको तू अपने इन प्राकृत नेत्रों (चर्म चक्षुओं) द्वारा देखने में निःसन्देह समर्थ नहीं है। अतः मैं तुझे वह दिव्य अर्थात् अलौकिक चक्षु प्रदान करता हूँ, इससे तू मुझे और मेरी उस ईश्वरीय योग शक्ति को देख सकेगा।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥'

गीता 11/8

भक्त की ऐसी प्रबल जिज्ञासा देख भगवान् भक्त के समक्ष अपने को प्रकट कर देते हैं भक्त कृतार्थ हो जाता है।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

रा.च.मा. 2/126/3

शिष्य का पुरुषार्थ काम नहीं देता प्रत्युत गुरु कृपा ही होती है गुरु भक्त की ऐसी प्रबल जिज्ञासा देख द्रवित हो जाते हैं। वस्तुतः साधना कृपा साध्य ही है श्रम साध्य नहीं है, श्वेताश्वतरोपनिषद् के ऋषि गुरु महिमा का वर्णन करते हुये लिखते हैं—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

श्वेताश्वतरो० 6/23

अर्थात् जिस साधक की परम देव परमेश्वर में भक्ति है तथा जिस प्रकार परमेश्वर में है उसी प्रकार अपने गुरु में भी है।

ऐसे महात्मा पुरुष के हृदय में ही ये बताये हुये रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं। ऐसे समर्पित शिष्य के समक्ष ही गुरु अपने को प्रकट कर देते हैं।

हे गुरो! हम भी शरणागत हैं हम सबको भी स्वीकार करें यही प्रार्थना है आपके श्री चरणों में।

✦✦

अमृत वचन

- यदि तुम दिन भर के कामों से थककर चकनाचूर हो गये हो तो दस मिनट छोटे बच्चों में बैठकर उनसे प्रेम की बातें कर लो और यदि तुम संसार की उलझनों से परेशान होकर "किंकर्त्तव्यविमूढ़" हो गए हो तो किसी संत के सानिध्य में बैठकर उनकी बातों को ही ध्यान से सुन लो, शान्ति पा जाओगे।
- जाग्रत में शान्त होने से मनुष्य के अन्तःकरण अर्थात् उसकी आत्मा को शान्ति मिलती है।
- जिस बर्तन में जो वस्तु भरी होती है उसमें गंध भी वैसी ही आ जाती है उन्हीं को वासनायें कहते हैं।

— परम भागवत परमसंत प० पू० पंडित जी

गुहार

— श्री रामेश्वर पाठक

हे परम गुरु! हे परम पिता! शतकोटि नमन स्वीकार करो।
चरणों में श्रद्धा दो भक्ति दो अन्तर में विश्वास भरो॥

जब से तुमसे मैं दूर हुआ अगनित ब्रह्माण्डों में भटका।
अगनित जड़-चेतन देह धरे अगनित गुल-खारों में अटका।
यह तन भी व्यर्थ हुआ जाता अब तो करुणाकर कृपा करो।
चरणों में श्रद्धा दो भक्ति दो अन्तर में विश्वास भरो॥

कितने आँगन शैशव बीते, कितने द्वारे खेली होली।
कितनी शय्या पर जहर पिया, कितने मरघट निकली डोली।
इस जनम-मरण के क्रूर पाश से हे सर्वेश्वर मुक्त करो।
चरणों में श्रद्धा दो भक्ति दो अन्तर में विश्वास भरो॥

यह मन विषपायी भौंरा है विषयों के वन में मँडराता।
मैं लाख यतन कर हार गया, यह असुर उच्छृंखल मदमाता।
हे नीलकंठ! हे मातृगुरो! इसको अपने में लीन करो।
चरणों में श्रद्धा दो भक्ति दो अंतर में विश्वास भरो॥

अपना दुःख किससे विनय करूँ, तुम एकमात्र आश्रयदाता।
मैं दीन मलीन अबुध सुत हूँ तुमसे है जन्मों का नाता।
अब अंग लगाकर दो मुझको विश्राम परम गुरु दया करो।
चरणों में श्रद्धा दो भक्ति दो अन्तर में विश्वास भरो।
हे परम गुरु! हे परमपिता! शतकोटि नमन स्वीकार करो॥ ✦✦

संस्मरण-

गुरु प्राप्ति

— श्री केशवदेव राव

सन् 1948 में मैं अपने निवास स्थान मुकुन्दगढ़ आया हुआ था। अकस्मात मुझे बुखार हो गया और उसके लिए स्थानीय कानौरिया औषधालय से दसमूलादि क्वाथ ले आया। सिगड़ी पर एक छोटे भगौने में उबालने को डाल दिया और जिस कागज में वह क्वाथ बंधा था वह "**कल्याण**" का एक पृष्ठ निकला। उसमें लिखा था "**गुरु प्राप्त करने का उपाय**"। मेरी उत्सुकता बढ़ी और मैंने उसे गौर से पढ़ा। लिखा था "**ओम् नमः शिवाय**" मन्त्र का सवा लाख जाप करने से गुरु तत्क्षण प्राप्त होते हैं। मेरे विचार में आया कि क्यों न मैं ये जाप कर डालूँ ताकि मन की मुराद पूरी हो।

मेरे घर में मेरी बूढ़ी दादी की माला उसकी खाट के सिरहाने के पाये पर टंगी रहती थी मैंने उसे ले लिया और एकान्त स्थान के लिए छत के एक कोने में सिरकी तान कर छाया करली।

अब दिन में जब भी मुझे फुर्सत मिले मैं जाप कर डालूँ और उसकी गिनती एक कागज पर रोज नोट करलूँ। करीब बीस पच्चीस दिन लगे होंगे और जाप का एक दिन जोड़ सवा लाख हो गया। उस दिन दोपहर के चार बजे होंगे कि मैं छत के नीचे आ गया और इंतजार बड़ी उत्सुकता के साथ करने लगा कि आज देखें मुझे किस प्रकार गुरु प्राप्त होते हैं।

पांच बजने के साथ-साथ मेरे एक मित्र श्री बृजलाल खाण्डल मेरे दरवाजे पर आकर आवाज लगाते हैं कि "**अरे केशवदेव, अंदर घुसे क्या कर रहे हो, चलो थोड़ा घूमने चलें**" मैं उनके साथ हो लिया और हम दोनों पास ही करीब एक मील दूर एक जोहड़े (तालाब) के नजदीक बालू के टीले पर जा बैठे। बड़ा सुहावना समय था, एकान्त और नीरव, सूर्यास्त के वक्त की किरणें दूर-दूर तक फैल रही थीं।

बृजलालजी बड़े प्रसन्न नज़र आ रहे थे। वे खामखां की हंसी हंसने लगे और मुझे भी हंसाने लगे। लेकिन मैं तो किसी दूसरे ही ध्यान में था, आज मुझे गुरु प्राप्त होने चाहिये।

इतने में बृजलालजी बोल उठे, "**केशवदेव भाई, तुम भी गुरु क्यों नहीं कर लेते हो?**" मैं उनके शब्द सुनकर स्तब्ध रह गया, मुख से बोल निकले कि गुरु कहां मिलते हैं? मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने मुझे कहा कि तुझे गुरु मैं बताऊँगा, मैंने भी उनको गुरु किया है, तुम भी करलो, गृहस्थ हैं, साक्षात ईश्वर हैं, मेरा तो जीवन बदल दिया, तुम भी मेरे साथ चलना मैं तुम्हें उनसे मिला दूँगा "मेरे शरीर के रोयें खड़े हो गये। आहा आज मुझे गुरु प्राप्त हो गया। ईश्वर की महान कृपा हुई है कि इन्होंने मेरे को बताया, नहीं तो मैं बृजलालजी के साथ तो कई बार घूमने गया था किन्तु पहले कभी चर्चा ही नहीं हुई। वह टीला आज भी मेरे लिये तीर्थ स्थल बना हुआ है।

हफ्ताभर के बाद बृजलालजी और मैं साथ-साथ एटा गये और गुरु महाराज के दर्शन कर कृत-कृत्य हो गये। धन्य प्रभु! धन्य कृपासिन्धु!!

प्रथम बैठक

श्री बृजलालजी के साथ मैं भी कासगंज होता हुआ सवेरे एटा पहुँचा। श्रीयुत् डॉक्टर साहब अपने निवास स्थान पर ही थे और अंदर कमरे में एक मुड्डे पर बैठ हुक्का पी रहे थे। बृजलालजी ने उनके श्री चरणों को स्पर्श करके साष्टांग प्रणाम किया तत्पश्चात मैं भी उसी तरह चरण छूकर दरवाजे की चौखट के सहारे खड़ा हो गया। उस समय की मेरी हालत अजीब थी, सारा शरीर कांप रहा था, रोंगटे खड़े थे और हालत पसीना-पसीना हो रही थी। गुरु महाराज ने मुझे बैठने का इशारा किया और उस समय बृजलालजी ने मेरा संक्षिप्त परिचय दिया।

सायंकाल सूर्यास्त के बाद ध्यान की क्रिया सीखने के लिए हम गुरु महाराज के सामने फर्श पर बैठ गये। महाराज जी ने मुझसे प्रश्न किया—तुम यहाँ किसलिये आये हो? मैंने हाथ जोड़ कर कहा कि ''महाराज मैं आपकी शरण में आया हूँ।'' फिर पूछा—हमसे क्या चाहते हो? मैंने कहा—''महाराज आपकी दया दृष्टि की भीख चाहता हूँ। मुझे आत्मज्ञान प्राप्त करने का साधन बताइये।''

इसके बाद वे मेरे उत्तर से प्रसन्न हुए और मुझे साधन की क्रिया बताई कि ''**तुम मेरा ध्यान करो**'' आँखें बन्द करके मैं जैसे ही बैठा मुझे कुछ देर बाद अपना होश नहीं रहा, फिर मैं शांति की गोद में अपने आपको बैठा महसूस करने लगा। कुछ ही मिनटों के बाद मुझे गर्मी लगने लगी और उसकी तपन से मुझे ऐसा आभास हुआ कि जैसे हजारों सूर्य की तेजी और चकाचौंध से मेरा जैसे जी घबराने लगा है। यह देखकर गुरु महाराज ने मुझे संभालते हुए ऊपर शिवलोक के स्थान का दृश्य दिखाते हुए भगवान शिव की जटाओं से शीतल जल की धारा बहाती हुई मातेश्वरी गंगा के दर्शनों का दृश्य दिखाकर मेरी जलती हुई तपन को शांत और शीतलता में परिणित कर दिया। अब मैं आनन्द में विभोर होकर उस ठंडक का पान करता रहा और कुछ देर बाद श्री गुरुदेवजी ने आँखें खोल लेने का आदेश किया। कृत-कृत्य हो गया, जन्म जन्मान्तर की तपन शांत कर दी, दया का स्रोत अंतर में बहा दिया, कोटि जन्मों के पापों को अग्नि में जला कर नाश कर दिया। बोले ''**तुम्हें शिवलोक तक पहुँचा दिया है।**''

यही नहीं, फिर बोले कि सबेरे जंगल में जल्दी ही घूमने चलेंगे वहीं पर ध्यान करायेंगे। सबेरे थोड़ी दूर खेतों में जाकर एक पेड़ के तले सामने रूबरू बैठा कर ध्यान करवाया और आधे घण्टे के बाद जब बोले कि आँखें खोल दो, तो मैंने देखा वहाँ मेरे शरीर पर असंख्य चीटियां नीचे ऊपर चल रही हैं। मैं देखकर घबरा गया किन्तु वे बोले कि ''**अपने आप जमीन पर चली जायेंगी**'' एक भी चींटी ने न काटा न कोई तकलीफ हुई। शरीर का कतई भान नहीं, ध्याता, धेय और ध्यान को एक कर दिया। धन्य महाप्रभु, तेरी अहेतुकी कृपा से मैं कृतार्थ हो गया। ✦✦

आन्तरिक प्रसन्नता

— श्री गोपालकृष्ण रंजन

रामाश्रम सत्संग मथुरा के संस्थापक परम पूज्य श्री गुरु महाराजजी अपने परमार्थ पथ के दस आलोक के चौथे आलोक में कहते हैं—'अपने जीवन में आन्तरिक प्रसन्नता लाओ। यह बहुत बड़ा ईश्वरीय गुण है।'

आनन्द हमारा स्वाभाविक गुण है। परमात्मा या ईश्वर को सच्चिदानंद कहा जाता है अर्थात् सत्, चित् और आनंद जिसका स्वभाव हो। हम उसी परमात्मा के अंश हैं इसलिए हमारे भी स्वाभाविक गुण हैं—सत्, चित और आनंद।

सभी प्रसन्न रहना चाहते हैं। अपने हर कार्य में, सम्बन्धों में, हम प्रसन्नता और आनंद ही ढूँढ़ते हैं। रमन महर्षिजी कहते हैं—आनंद और प्रसन्नता की इच्छा ग़लत नहीं है क्योंकि यह तो हमारा स्वभाव है। ग़लत यदि कुछ है तो वह है इस प्रसन्नता को बाहर ढूँढ़ना जबकि वह हमारे अंदर ही है। फिर समस्या क्या है—हमारा स्वभाव आनंद है और हमारा उद्देश्य भी आनंद और प्रसन्नता है तो हम दुःखी क्यों रहते हैं और अपने जीवन में अपूर्णता क्यों अनुभव करते हैं?

ऐसा इसलिए है क्योंकि हमारे वास्तविक स्वरूप पर अज्ञानता का एक पर्दा पड़ा है और इस अज्ञानता के पीछे भी हमारा वही चिर शत्रु है—अहं अर्थात् ego। जब हम किसी ऐसी गतिविधि या activity में संलग्न रहते हैं जिसमें हमें बड़ा आनन्द आता है, उस आनंद और प्रसन्नता का स्रोत वह कार्य या गतिविधि नहीं बल्कि हम स्वयं हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो दूसरे भी जो उस गतिविधि में संलग्न होते उन्हें भी उतना ही आनन्द आता पर ऐसा नहीं होता। हम अक्सर देखते हैं कि कुछ लोग किसी गतिविधि के दीवाने होते हैं तो कुछ लोगों को वही गतिविधि फूटी आँख भी नहीं सुहाती। यही नहीं उस गतिविधि के चाहने वालों की चाहत की मात्रा में भी विषमता देखी जा सकती है। दूसरे, समय के साथ हम हमारे स्वयं के उस गतिविधि के रुझान में भी उतार चढ़ाव देखते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रसन्नता हमारे अंदर है न कि बाह्य वस्तुओं या गतिविधियों में। पर यदि ऐसा है तो हम हमेशा प्रसन्नता और आनन्द की स्थिति में क्यों नहीं रहते?

यदि हम थोड़ी गहराई से देखें, तो पाएँगे कि वास्तव में जब हम प्रसन्न होते हैं उस समय हम स्वयं को भूल जाते हैं। दूसरे शब्दों में, हमारा "मैं" गुम हो जाता है। हमें यह एहसास नहीं रहता कि "मैं यह कर रहा हूँ", "मुझे यह चाहिए" इत्यादि। अर्थात् उस क्रिया के समय अहं या ego का कोई आवरण या overlay नहीं रहता और नहीं मन की बड़बड़ाहट रहती है। अहं और मन की अनुपस्थिति में क्षणिक तौर पर ही सही, हमारी वास्तविक आत्मा को अहं और मन के इन

आवरणों से उजागर होने का अवसर मिलता है और चूँकि आनंद हमारा मूल स्वभाव है हम आनन्द का अनुभव करते हैं। आनंद और अनंत ये दोनों शब्द अविभाज्य और एक तरह से पर्याय हैं। आत्मा अनंत है पर अहं उस पर अपूर्णता या परिमितता (finiteness) का आवरण डालता है। परिणामतः आत्मा भ्रमवश इस परिमितता और अपूर्णता को पूर्णता में बदलने के लिए बाह्य जगत में भटकती है। कुछ क्षणों के लिए जब अहं अदृश्य हो जाता है आत्मा को अपनी ही पूर्णता और अनंतता का अनुभव होता है और वह अनंत या आनंद का अनुभव करती है। पर दुर्भाग्य से कुछ ही क्षण बाद अहं फिर आ धमकता है और घोषणा करता है "मैं प्रसन्न हूँ और फलाँ काम में बड़ा मज़ा आया"। अहं मन के साथ मिलकर इस अनुभव को स्मृति (memory) में बदल देता है। स्मृति इस प्रसन्नता के नए मानदंड (benchmark) खड़ी करती है और साथ ही इस विश्वास को भी सुदृढ़ करती है कि आनंद और प्रसन्नता फलां बाह्य वस्तु या गतिविधि में है। परिणामस्वरूप, हम उस वस्तु और गतिविधि के पीछे भागते हैं पर चूँकि स्मृति ने उस प्रसन्नता के नए मानदंड बना दिए हैं, हमारा "मैं" हमारा पीछा नहीं छोड़ता और हम पाते हैं कि वैसी प्रसन्नता अब नहीं रही। प्रसन्नता और आनन्द के लिए हम दूसरी वस्तु या गतिविधि की तलाश करते हैं और वही चक्र फिर दोहराते रहते हैं।

यदि हमें चिरस्थायी आनंद की चाह है तो हमें बाहर से अंदर की ओर मुड़ना होगा। इस यात्रा में मन, बुद्धि और अहं का विसर्जन करके आत्म दर्शन करना होगा। फिर हमें आत्मा के इस स्वाभाविक गुण आनंद से परिचय होगा। परम पूज्य परमसंत श्री गुरु महाराजजी की आंतरिक साधना हमें बड़ी सुगमता से इस ध्येय तक पहुँचाती है। नियमित अभ्यास से बहुत अल्प काल में ही हम आत्मा के ऊपर अहं और मन के इस जकड़न को कमज़ोर होता महसूस कर सकते हैं। जैसे-जैसे अहं की पकड़ ढीली होती जाएगी हम पाएँगे कि हमारे अंदर ही चिर आनंद का एक झरना फूट रहा है। आनंद का स्रोत अब बाहर नहीं हमारे अंदर ही है। बाह्य चमक दमक, वस्तुओं का अभाव या परिपूर्णता हमें आनंदित या दुःखी नहीं करेगी क्योंकि हमने जान लिया है कि आनंद तो हमारे अंदर ही है इसके लिए ठौर-ठौर भटकने की कोई आवश्यकता नहीं। हमारी साधना में हमारी प्रगति का एक मापदंड यह भी है कि हमारे अंदर कितनी आंतरिक प्रसन्नता भर रही है, यह कितनी स्थायी है और कितनी समनुरूप (consistent) है। यदि साधना से हमें आंतरिक प्रसन्नता नहीं मिल रही, इसका अर्थ यही लगाना चाहिए कि हमारे प्रयास में कहीं कुछ कमी है। परम पूज्य समर्थ गुरु महाराज के श्रीचरणों में प्रार्थना है कि हम सब पर दया करें।

✦✦

दूसरों के साथ जैसा व्यवहार किया जाता है, वही अपने लिए फलित होता है। अतः ऐसा कर्म कभी नहीं करना चाहिए जो दूसरों को कष्ट देने वाला हो।

कर्म की गति

— श्री राजकुमार नामदेव

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं कहा है कि कर्म की गति गहन है मनुष्य जन्म से मृत्यु तक कुछ न कुछ कर्म करता ही रहता है, मनुष्य के मन में हमेशा यह विचार आया करता है कि एक मनुष्य सुखी है और दूसरा दुःखी क्यों? इस युग में बदचलन व्यक्ति, रिश्वतखोर, कालाधन कमाने वाले, सुखी और प्रतिष्ठित हैं, उनके पास मोटर-बंगला, नौकर, लाखों का बैंक बैलेंस है, जबकि न्याय और नीति परायण व्यक्ति, धर्म पर चलने वाला व्यक्ति दुःखी और अभावमय जीवन जी रहा है।

हमारे सोचने में लगता है कि कहीं सृष्टि के संचालन में कोई त्रुटि तो नहीं हो रही, हमारी श्रद्धा ईश्वर से उठने लगती है किंतु सच्चाई यह है कि ईश्वर के यहाँ देर भी नहीं है, न अंधेर है। इसके लिए कर्म सिद्धांत का ज्ञान होना अति आवश्यक है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है कि "कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करै सो तस फल चाखा" ईश्वर के विधान में कहीं भी अव्यवस्था नहीं है। आपने पढ़ा है महाराजा दशरथ को भगवान राम के पिता होते हुए भी पुत्र वियोग में मृत्यु का प्रतिफल भोगना पड़ा, क्यों? कर्म की गति एवं प्रतिफल सुनिश्चित है आप सभी ने भीष्मपितामह का जीवन चरित्र महाभारत में पढ़ा है मात्र एक दोमुहीं को कांटों में फेंकने के परिणाम स्वरूप छः माह तक बाणों की सैया पर कितना असहनीय कष्ट सहन करना पड़ा था। महापुरुषों को क्या ईश्वर को भी जब पृथ्वी लोक पर आना पड़ता है तो कर्म सिद्धांत का पालन एवं प्रकृति के नियमों का अनुशरण करना पड़ता है।

कर्म-सिद्धांत क्या है? इसे समझें। हम नित्यप्रति जो भी कर्म क्रिया या काम करते हैं उसके संस्कार उसी क्षण बन जाते हैं और फिर उसका प्रतिफल भी निश्चित समय पर भुगतान करना पड़ता है, यही है कर्म सिद्धांत।

भगवान कृष्ण ने गीता में कर्म के तीन भाग किये हैं—(1) क्रियमाण कर्म (2) संचित कर्म (3) प्रारब्ध कर्म।

हम सुबह से, सोते समय तक जो भी कर्म करते हैं वे सब क्रियमाण कर्म होते हैं। यह कर्म फल अवश्य देते हैं। फल भोगने पर ही छुटकारा मिलता है जैसे तुमने किसी को कुछ कह दिया, उसने तुमको थप्पड़ मारा, कर्म का फल मिल गया।

मनुष्य के कुछ क्रियमाण कर्म ऐसे होते हैं जो तत्काल फल नहीं देते। वे कर्म खाते में जमा रहते हैं, वे संचित कर्म कहलाते हैं। जैसे—आपने युवा

अवस्था में माँ-बाप को कष्ट दिया, तुम्हारा बेटा तुमको वृद्धावस्था में दु:ख देगा। ऐसे क्रियमाण कर्म पकने पर, अवसर आने पर, प्रतिफलित होते हैं। संचित कर्मों का फल यदि इस जन्म में नहीं भोग पाये तो अगले जन्म में उसका भुगतान होगा। इस प्रकार मनुष्य के संचित कर्म कई जन्मों तक भोगने पड़ते हैं परंतु अज्ञान और अविद्या के कारण जीव इसकी कल्पना नहीं कर पाता कि यह मेरा कौनसा, किस जन्म का फल, पकने पर इस समय भोगना पड़ रहा है।

इसको एक उदाहरण से हम समझ सकते हैं कि राजा धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों की एक साथ मृत्यु हुई। तब राजा ने दु:खी होकर श्रीकृष्ण से पूछा मैंने ऐसा कौन सा भयंकर पाप कर्म किया जिस कारण मुझे मेरे सामने ही सौ पुत्रों की कष्टमय मृत्यु का दु:ख देखना पड़ा। भगवान श्रीकृष्ण ने उसको पूर्व जन्मों को देखने की दृष्टि दी। राजा ने देखा कि उसके चालीस जन्म पूर्व वह एक बहेलिया (शिकारी) था। वृक्ष पर बैठे हुये पक्षियों को पकड़ने के लिए एक जलती हुई जाल वृक्ष पर फेंकी तो कई पक्षी उड़ गये, कुछ पक्षी अंधे हो गये, बाकी सौ छोटे पक्षी जो उड़ नहीं सके थे वे जाल में राख हो गये। यह क्रियमाण कर्म चालीस जन्मों तक संचित कर्म बना रहा। जब यह कर्म फल पका तो इस जन्म में आपके अंधेपन का कारण और सौ पुत्रों की मृत्यु का कारण बना। अत: संचित कर्म प्रतिफल के लिए प्रतीक्षा में रहते हैं और अवसर मिलने पर प्रतिफलित होते हैं।

संचित कर्म ही प्रारब्ध कर्म कहे जाते हैं अनादि काल से जन्म-जन्मांतर से पीछा करते रहते हैं और प्रारब्ध कर्म का फल भोगने के लिए देह धारण करनी पड़ती है। फल भोगने के बाद ही छुटकारा मिलता है। विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ, व्याधियाँ, दु:ख, कष्ट आदि आते हैं। प्रारब्ध कर्म फल के अनुसार ही माता-पिता, भाई-बहिन, पति-पत्नि, संतान आदि संबंधी बनते हैं और जीव जन्म मरण के चक्कर में घूमता-फिरता है।

अपने किए कर्म मनुष्य के पीछे-पीछे चलते रहते हैं यदि तुम चतुर-चालाक हो, बुद्धिमानी से दुनिया और अदालत से बच भी गये तो प्रकृति की कोर्ट, ईश्वर का न्यायालय कदापि नहीं छोड़ेगा। वहाँ किसी की सिफारिश नहीं चलेगी, इसलिए समझदार मनुष्य को कर्म का फल हँसते हुए भोगना चाहिए, इसी में उसका भला है।

मनुष्य अपने जीवन में कितने ही वृत, उपवास, पूजा-पाठ, जप-तप करके सोचे कि उसके प्रारब्ध कट जायेंगे तो यह भी संभव नहीं है इससे पुण्य तो कमाया जा सकता है परंतु प्रारब्ध नहीं खत्म किया जा सकता।

प्रत्येक मनुष्य के प्रारब्ध के अनुसार ही उसके भाग्य का निर्माण होगा। भाग्य से अधिक, न कम उसे प्राप्त होगा। अपने कर्म अनुसार ही बैंक-बैलेंस के आधार पर धन-संपत्ति, सुख-वैभव, मान-सम्मान, शिक्षा, पद, प्रतिष्ठा और आयु प्राप्त होते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि मनुष्य को पुरुषार्थ नहीं करना चाहिए, अत: मनुष्य को सदैव निष्काम कर्म, शास्त्र निर्धारित कर्म करते रहना चाहिए।

परम भागवत पूज्य पंडित जी कहा करते थे कि मनुष्य के जीवन में दु:ख तो आवेंगे परन्तु वह यदि किसी सतपुरुष से जुड़ा रहेगा तो दु:खी नहीं होगा। ईश्वर भक्ति से या सत्संग से कोई सोचे कि दु:ख न आवें तो गुरु महाराज ने कहा है कि उसे प्रारब्ध तो भोगना ही पड़ेगा और उसे प्रसन्नता से भोगना चाहिये साथ ही जीवन में निष्काम कर्म योग करते हुये संसार में मेहमान बनकर रहना चाहिये। वह जो भी कर्म करे उसे गुरु का समझकर करे तो प्रारब्ध नहीं बनेगा।

साथ ही साधक को प्रतिदिन सोते समय दिनभर के किये शुभ अशुभ कर्म जो बन बड़े हैं उनका प्रतिफल पूज्य गुरु महाराज के चरणों में समर्पित करना चाहिये। वर्ष भर के सभी अच्छे कर्म सबका कर्म फल गुरु पूर्णिमा पर गुरु महाराज के चरणों में सौंप कर अपने आप को हल्का करना ही साधक की समझदारी है। गुरु महाराज के श्री चरणों में बार-बार विनती है कि हम सबको इतनी शक्ति, साहस, बल, बुद्धि, सामर्थ प्रदान करें कि हम सब ऐसे ही कर्म करें। मालिक जैसा हमसे कराना चाहता है वैसे ही हम सब गुरु मुख हो जायें। परम पूज्य गुरु महाराज साहब संसार के सब प्राणियों का कल्याण करने की कृपा करें। ✦✦

इस संसार में जितनी इच्छाएँ हैं, वे सब काँटे के समान हैं, वे जितनी बढ़ती जाती हैं उतना ही मन पीड़ित होता जाता है। इसलिए इच्छाएँ पूर्ण करने की दौड़ में पड़ने के वजाय जितना है उसमें संतोष करने का प्रयत्न करो तो जीवन स्वतः ही तनाव मुक्त हो जायेगा।

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्रों का भण्डारा/सत्संग कार्यक्रम

1. धामपुर भण्डारा :

दिनांक	:	22, 23 एवं 24 सितम्बर 2015
सत्संग स्थल	:	मनभावन वैंकट हाल, शिवाजी पार्क
सम्पर्क सूत्र	:	श्री रामगोपाल सिंह मो. 09758116547
		डा. महेश सिंह सिसौदिया मो. 09997013158

2. रामगढ़-शेखावटी का सत्संग कार्यक्रम :

दिनांक	:	11 (सायं से), 12 एवं 13 अगस्त 2015
सत्संग स्थल	:	श्री सप्तरिषी भवन
सम्पर्क सूत्र	:	श्री रामकुमार बनवारी लाल
		फोन नं. 01571-240731

प्रार्थना

— श्री ठाकुर प्रयाग

हे अम्ब हे जगदम्ब माँ मम प्रार्थना सुन लीजिये।
हौं दीन हीन मलीन माँ अब स्वच्छ मुझको कीजिये॥

चहुँ ओर फिरता ही रहा अवगुणों की गठरी लिये।
नहिं पास टिकने कोई दिया फटकार ही मिलती रही॥

ऐसों की तुम अवलम्ब हो निज तनय की सुधि लीजिये।
तुम कृपालु दीन दयालु हो अब तो सहारा दीजिये॥

कहाँ जाऊँ नहिं कहिं ठौर है अपना न कोई और है।
गुरु मातु पितु सब आप हो 'तुम हो मेरे' कह दीजिये॥

यही आश अरु विश्वास है नहिं और कोई पास है।
मम हृदय में कर वास माँ, स्वप्रकाश अब तो कीजिये॥

नैया पड़ी भव जाल में, डूबा हुआ जंजाल में।
हर तरफ से कंगाल हूँ अपनी शरण में लीजिए॥

नहिं ध्यान जप तप ज्ञान है मद मोह अरु अज्ञान है।
असमर्थ हूँ चहुँ ओर से सुख शान्ति वर्षा कीजिये॥

'ठाकुर' तेरा अनजान है दुखिया की सुधि लीजिये।

सच्ची जिज्ञासा

— श्रीमती गीता सिंह

सच्ची जिज्ञासा आत्मा के लिये आतुर आमंत्रण है जिसे पाकर प्रगट होने से वह अपने को रोक नहीं पाती। आत्मा का निवास सबमें है, फिर भी सभी उसे जान नहीं पाते, इसी का उसे दुःख है। इसलिये वह अपने को जनाना चाहती है, सबके साथ आनन्दपूर्वक रहना चाहती है, जीवन को खुशहाल और जीवन्त बनाना चाहती है, मगर सच्ची जिज्ञासा के अभाव में उसका मार्ग ही बन्द हो जाता है, कोई दूसरा मार्ग है ही नहीं। इसलिये जहाँ सच्ची जिज्ञासा होती है, वह झट प्रगट होने को बेताव हो जाती है। कोई कितना भी अपना हो, निकट से निकट का हो, उसे आने का निमंत्रण तो देना ही पड़ता है।

सच्ची जिज्ञासा आत्मा के प्रति अटल अनुराग ही है। इसमें बस एक ही ध्येय होता है, एक ही चाह होती है कि हम उसे जानें, पहचानें, अपना बना लें। इस एक के सिवा और कुछ नहीं होता। नचिकेता ने सिर्फ आत्मा को जानना चाहा, उसी पर अडिग रहा। उसने बदले में अमर जीवन, शाश्वत सुख भोग सबको ठुकरा दिया, धर्मराज के द्वारा दिये जा रहे किसी भी प्रलोभन की ओर उसने जरा भी ध्यान नहीं दिया, तब आत्मा ने अपना भेद उस पर प्रगट कर दिया। वह अपने सारे पर्दे उठाकर उस जिज्ञासु के सम्मुख आ खड़ी हुयी। धर्मराज तो एक बहाना मात्र थे, स्वयं आत्मा ही ने अपना ज्ञान उसे दिया। सच्ची जिज्ञासा हो तो आत्मज्ञान पल भर की बात है क्योंकि आत्मा पहले से ही प्रगट होने को तैयार बैठी रहती है।

सच्चा जिज्ञासु अपना सब कुछ न्योछावर करने को तैयार रहता है। राजा जनक के अन्दर आत्मा को जानने की प्रबल इच्छा हुयी तो वह राज-पाट सब कुछ त्यागने को तैयार हो गये। राज्य में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो भी मुझे पल भर में आत्मज्ञान करा देगा, उसे मैं आधा राज्य दे दूँगा। जब आत्मज्ञानी अष्टावक्रजी ज्ञान कराने बैठे तो कहा—संकल्प करो और राजा ने आधे राज्य का संकल्प कर दिया। गुरु बोले—राजन् इतने महान आत्मज्ञान के लिये सिर्फ आधा राज्य? यह तो आत्मज्ञान का अपमान है। राजा समझदार थे, समझ गये और तुरंत सम्पूर्ण राज्य का संकल्प कर दिया। गुरु ने कहा—राजन् इसकी कीमत सम्पूर्ण राज्य भी नहीं है। राजा ने पूछा तब और क्या है, और तो इससे कीमती कुछ भी मेरे पास नहीं है। तब गुरु ने कहा—राजन् एक चीज और आपके पास बची है, वह है—आपका मन। यदि मन को मुझे दे दें तो कुछ काम बन सकता है। और राजा ने संकल्प करके मन को भी दे डाला। बाहर-भीतर से खाली होकर वह बैठ गये, अपना कुछ न रहा, और गुरु प्रताप से पल मात्र में ही आत्मा ने आकर उन्हें गले लगा लिया। यह है सच्ची जिज्ञासा का चमत्कार! प्रपंच में मत पड़ो

दिल से पुकारो और पाओ।

श्री रामचरितमानस सच्ची जिज्ञासा से उत्पन्न अमृत है। माँ पार्वती के हृदय में सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न हुयी और उन्होंने सुअवसर देखकर भगवान शिव से आर्त प्रार्थना की—प्रभो! मैं घट-घट वासी भगवान राम का चरित्र सुनना चाहती हूँ उनकी महिमा जानना चाहती हूँ। मेरे अन्दर पहले जैसा मोह नहीं है, बल्कि कथा के प्रति प्रेम है। यद्यपि कि मैं स्त्री हूँ, अज्ञानी हूँ, और इस ज्ञान की अधिकारिणी भी नहीं हूँ, मगर हृदय में जानने की प्रबल जिज्ञासा है। मैं आपके चरणों की दासी हूँ। सुना है कि ज्ञानीजन आर्त्त जिज्ञासु पाकर गूढ़ से भी गूढ़ तत्वों को छिपाते नहीं हैं। इसलिये इस दीन दासी पर दया कीजिये और राम कौन हैं, ईश्वर कौन हैं, इसमें गूढ़ रहस्य क्या है, विस्तार से बताने की कृपा करें। पार्वती की सहज स्वाभाविक जिज्ञासा सुनते ही भगवान शिव ध्यानमग्न हो गये, उनके हृदय में आत्मा साक्षात् हो उठी, हृदय आर्द्र हो गया, अव्यक्त आत्मा व्यक्त होने के लिये अकुला उठी। ध्यान से जागने पर भक्ति का प्रवाह ऐसा चला कि माँ पार्वती उसमें निमग्न हो गयीं। इस कथा में आत्मा ने अपना अमृत इतना उँड़ेला कि आज भी इस प्रसंग को पढ़-सुनकर लोग भाव विह्वल हो उठते हैं।

ऐसा लगता है कि आत्मा की कथा कहना किसी के भी वश की बात नहीं है। यदि ऐसा होता तो भगवान शिव न जाने कब बहुत पहले ही यह कथा पार्वती को सुना दिए होते क्योंकि दोनों का सम्बंध पहले से ही था, जन्म-जन्म का था। मगर ऐसा नहीं हुआ। अर्थात् भगवान शिव चाहकर भी यह कथा नहीं कह सकते थे, जब तक आत्मा अपना ज्ञान देने स्वयं न उतर आए। अर्थात् जब तक कोई जिज्ञासु न हो, न आत्मा प्रत्यक्ष होगी, न ज्ञान मिल पायेगा। जब पार्वती ने अपनी हार्दिक इच्छा जाहिर की तभी आत्मा ने अपना रास्ता बनाया और भगवान शिव के अन्तःकरण के माध्यम से वह बाहर आयी। सच्ची जिज्ञासा उस पूर्ण चन्द्र की भाँति है जिसे सामने देखकर समुद्र उफनने से अपने को रोक नहीं पाता। सच्चा जिज्ञासु न मिले तो चीज अन्दर ही पड़ी रहती है, वर्षों तक, युगों तक, न उसे कोई जान पाता है, न लाभ उठा पाता है। कोई राजा भगीरथ की तरह सच्चा जिज्ञासु ही उस आत्म गंगा को खींचकर धरती पर ला सकता है, अन्यथा वह पड़ी रहती भगवान शंकर की जटाओं में, विष्णु के पदनखों में।

श्रीमद्भगवद्गीता के लिये कहा गया है कि उपनिषदें सब गाय हैं, अर्जुन बछड़ा है और श्रीकृष्ण दूध दुहने वाले दोग्धा हैं। यह बड़ा अच्छा रूपक है। अर्थात् इस ज्ञान को प्रकाश में लाना भगवान कृष्ण के भी वश की बात नहीं थी। ऐसा होता तो कब का यह ज्ञान अर्जुन को सुना दिया होता। भला इतनी अच्छी विद्या वह अपने अंतरंग मित्र से छुपाते क्यों? युद्धभूमि में जब अर्जुन कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के भँवर जाल में फँस गया तो आर्त्त भाव से हृदय से पुकार उठा—इस समय आप ही मेरे गुरु हैं, मार्गदर्शक हैं, मुझे सत्य धर्म का ज्ञान दीजिये। मेरे सामने मेरे पूज्य गुरुजन और निर्दोष भतीजे युद्ध के लिए खड़े हैं। मैं इन पर कैसे प्रहार करूँगा। यह दृश्य देखकर मेरा शरीर काँप रहा है, मुख सूख रहा है, मैं खड़ा रह

पाने में भी असमर्थ हूँ। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखायी दे रहा है। आप मेरी रक्षा करें, मैं आपकी शरण में हूँ, आप मेरे गुरु हैं, मैं आपका दीन शिष्य। ऐसी आर्त प्रार्थना सुनते ही श्रीकृष्ण का हृदय द्रवित हो उठा, आत्मा जाग उठी और सत्य प्रगट होने को मचल उठा। सामने अर्जुन रूपी पिपासु बछड़ा को पाकर आत्मा रूपी सुरधेनु पेन्हा गयी और श्रीकृष्ण ने ज्ञान रूपी दूध निकालना प्रारंभ कर दिया। यदि वह जिज्ञासु अर्जुन न होता तो यह ज्ञानामृत हमें प्राप्त नहीं होता। इसलिये यह बात सर्वथा सत्य है कि सच्चा जिज्ञासु ही अध्यात्म का केन्द्र बिन्दु है।

सन्त और सद्गुरु संसार में आत्मा की प्रेरणा से ही आते हैं। वे तो मुक्त पुरुष हैं, संसार में आने का उनका एकमात्र कारण है—आत्मा से अनभिज्ञ जनों को आत्मज्ञान की सुधा पिलाना। ऐसे लाखों लाख सरल हृदय वाले प्रेमी जो कुछ भी नहीं जानते, बस निष्ठापूर्वक ईमानदारी से अपना कर्त्तव्य करना जानते हैं, न धर्म जानते हैं, न अधर्म, न वेद, न शास्त्र, न श्लोक, न मंत्र, बस गरीब भीलनी की तरह दिन-रात सेवा में जीवन होम करते रहते हैं, बस उन्हीं की मूक प्रार्थना, और आर्त जिज्ञासा से द्रवित होकर आत्मा उन्हें यहाँ भेजती है। वे सन्त सद्गुरु भगवान राम की तरह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते भीलनी के दरवाजे पर पहुँचकर जन-जन को अपनी पहचान करा देते हैं। शक्ति तो है ही सर्वत्र, बस उसकी पहचान भर करनी है।

अपनी गुरु परंपरा में पूज्य गुरुदेव, पूज्य दादा गुरु जी, पूज्य पंडित जी महाराज आदि इतने सजग और आर्त जिज्ञासु थे कि बराबर आत्मा की तरफ अपना तार जोड़े रहते थे कि आत्मा कब क्या फरमा रही है। उनका एक श्रवण हमारी बात सुनता रहता तो दूसरा आत्मा की पवित्र वाणी। सोते वक्त भी अपने सिरहाने कागज कलम रखकर सोते कि न जाने कब आत्मा का कौन सा संदेश आ जाय। संदेश आने से वे तुरंत लिख लेते थे। जो आत्मा की ओर देखेंगे उन्हें उसकी आवाज अवश्य सुनाई देगी।

आत्मा अपने आप में पूर्ण है, सन्तुष्ट है, उसके पास किसी भी चीज की कमी नहीं है, कमी है तो बस उसे चाहने वालों की, सच्चे प्रेमी और जिज्ञासु की। वह ऐसे प्रेमियों की बाट देखती रहती है। हम लाखों लाख साधकों के बीच आत्मा प्रेम की भूखी-प्यासी भटक रही है, यही उसका दु:ख है, इसी का अभाव है। शायद हम नियमों और औपचारिकताओं में पड़े हैं जो आत्मा को रास नहीं आती। इसलिये गुरुदेव ने कहा कि तुम कुछ मत करो बस शान्त होकर बैठ भर जाओ। आत्मा की ओर प्यार भरी नजरों से देखते भर रहो। मगर हमसे यही नहीं हो पाता। किसी ने ठीक ही कहा है—

मैं खोजता तुझे था जब कुंज और वन में।
तू ढूँढ़ता मुझे था, तब दीन के वतन में॥

✦✦

पेट तो भोजन से भरता है परन्तु यह मन अनन्त धन से भी नहीं भरता। कारण कि मन की खुराक रुपया नहीं है मन की खुराक तो प्रभु-प्रेम है।

साहित्य परिचय

1. मृत्यु और मृत्यु के पश्चात

जीवन क्या है? मृत्यु किसको कहते हैं और कैसे होती है? मृत्यु के समय प्राणी की क्या दशा होती है? प्राण निकल जाने पर जीवात्मा किन-किन गतियों को प्राप्त होता है। मानव जीवन की समस्याओं का समाधान, मुक्ति का सरलतम मार्ग एवं पूर्व जन्म, स्वर्ग व नरक आदि विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। प्रेमी पाठक इनसे लाभ उठाकर कर्त्तव्य मार्ग की ओर कदम उठाने का प्रयास करें।

2. गुरुतत्व

संसार में वही प्रसन्न रहता है जो किसी पर विश्वास ले आता है। आगे वह मनुष्य और भी सुखी रहता है जो ईश्वर पर विश्वास कर निकलता है। गुरु ईश्वर का प्रतीक होता है। ज्ञात और अज्ञात रूप से सभी महापुरुष गुरु के चरणों में पहुँचे हैं और उन्हीं की कृपा से ईश्वर तत्व को प्राप्त हुए।

जीवन में रहने का तरीका गुरु ही बताता है। परलोक की शिक्षा भी गुरु से ही मिलती है। गुरु पूर्ण होता है शिष्य अल्पज्ञ जिन्हें गुरु में ईश्वर भाव आ गया है, जो गुरु की ईश्वर भाव से भक्ति कर सकते हैं उन्हीं के हृदय में साधन रहस्यों का यथार्थ तत्व प्रकाशित होता है। इस छोटी-सी पुस्तक में जिन लेखों का संग्रह किया गया है, वह गुरु की महिमा समझने में सहायक होंगे।

निवेदन

जिन-जिन केन्द्रों पर सत्संग कार्यक्रम का आयोजन होता है वहाँ के आयोजकों से विनम्र निवेदन है कि सत्संग कार्यक्रम जिस माह में आयोजित करना है उससे कम से कम तीन माह पहले 'साधन' में प्रकाशित करने के लिए लिखित निवेदन भेजें जिससे उचित समय पर सत्संग का कार्यक्रम 'साधन' में प्रकाशित किया जा सके। तीन माह पहले 'साधन' में सत्संग कार्यक्रम प्रकाशित होने से सत्संगी भाई-बहिन अपना टिकट रिजर्व करा सकते हैं। साधन में चार मीटिंग एवं पाँच मीटिंग के सत्संग कार्यक्रम ही प्रकाशित किये जाते हैं। अतः आपसे निवेदन है कि चार मीटिंग से कम के सत्संग प्रोग्राम प्रकाशित करने के लिए अनुरोध न करें।

-प्रबन्धक

समाचार इधर–उधर के

मधुमेह पर नियंत्रण पाएं

मधुमेह इंसुलिन की कमी के कारण उत्पन्न शारीरिक स्थिति है। हमारे शरीर में पाचन संस्थान के कुछ नीचे बायीं ओर एक ग्रंथि होती है, जिसे पेंक्रियाज ग्रंथि कहते हैं। इसी ग्रंथि के कुछ विशेष कोष इंसुलिन नामक स्राव उत्पन्न करते हैं। खाये हुए पदार्थ पचकर जब रक्त में घुल-मिल जाते हैं तो रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है, परन्तु इंसुलिन इस बढ़ी शर्करा को शरीर के भिन्न-भिन्न कोषों को उपलब्ध कराती रहती है जिससे रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ने नहीं पाती। लेकिन, जब इंसुलिन के स्राव में कमी आ जाती है तो रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है। इसी स्थिति को मधुमेह कहते हैं।

मधुमेह के घरेलू नुस्खे–

- नियमित तीन महीने तक करेले की सब्जी घी में बनाकर खाने से मधुमेह में निश्चित रूप से लाभ होता है।
- रात को मैंथी के दाने पानी में भिगोकर रख दीजिए। सुबह उठकर दातून कर वह पानी पीकर मैंथी के दाने धीरे-धीरे चबा लीजिए। मधुमेह धीरे-धीरे ठीक होता चला जायेगा।
- सुबह टमाटर, संतरा और जामुन का नाश्ता करें। इनकी मात्रा 300 ग्राम पर्याप्त है।
- रात को काली किशमिश भिगोकर रखिये। सुबह उसका जल छानकर पी लीजिए।
- आंवले के चूर्ण को भिगोकर उसे कुछ देर रहने दीजिए। फिर उसे छानकर उसमें नीबू का रस निचोड़कर सुबह उठते ही पी लीजिए।
- मधुमेह की शिकायत होने पर आम और जामुन का रस बराबर मात्रा में मिलाकर दिन में तीन बार लगातार एक महीने तक सेवन करें।
- जामुन के कोमल हरे पत्ते पीसकर नियमित 25 दिन प्रातः पानी के साथ पीने से पेशाब में शक्कर आना रुक जाता है।

साभार—धीर साप्ताहिक

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्र चण्डीगढ़ (पंचकूला) का सत्संग कार्यक्रम

दिनांक	:	3 (सायं से), 4 एवं 5 नवम्बर 2015
सत्संग स्थल	:	सूद भवन, सेक्टर-10, पंचकूला
सम्पर्क सूत्र	:	श्रीमती सरोज बाल्याण मो. 09463396551
		श्री के. डी. शर्मा मो. 09465216642

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्रों का भण्डारा/सत्संग कार्यक्रम

1. मुम्बई का भण्डारा :

दिनांक	:	10, 11 एवं 12 अक्टूबर 2015
सत्संग स्थल	:	धूड़मल बजाज भवन, सुन्दर नगर, एस.बी. रोड, मलाड (प.) सर्वोदय बालिका विद्यालय के सामने
सम्पर्क सूत्र	:	श्री प्रेम रतन अग्रवाल मो. 09821777769 श्री रामफल राम मो. 09869844156 श्री श्याम मोहन श्रीवास्तव मो. 09820229840

2. गया का भण्डारा :

दिनांक	:	26, 27 एवं 28 अक्टूबर 2015
सत्संग स्थल	:	मगध विश्वविद्यालय, बोध गया
सम्पर्क सूत्र	:	डा० ऋषि कुमार (श्री मुकुल जी) मो. 09431483526, 09525701018

3. महम (जिला-रोहतक) का सत्संग कार्यक्रम :

दिनांक	:	9 (सायं से), 10 एवं 11 अगस्त 2015
सत्संग स्थल	:	श्री महाजन धर्मशाला, आजाद चौक, मेन बाजार, पटियाला बैंक के पास
सम्पर्क सूत्र	:	श्री लाल चन्द मो. 09467031848
	:	श्री राज सिंह मो. 09728240410

कृपया बाहर से आने वाले सत्संगी भाई-बहन पुराना बस अड्डा या भिमानी बस स्टैण्ड, महम में उतरें

दिवंगत आत्माओं के लिए प्रार्थना

परम पूज्य श्री गुरु महाराज से प्रार्थना है कि अप्रैल 2015 माह के दौरान रामाश्रम सत्संग, मथुरा से सम्बन्धित सभी दिवंगत आत्माओं को निजधाम में स्थान दें एवम् शोक संतप्त परिवारीजनों को धैर्य धारण करने की शक्ति प्रदान करें ।

वर्ष : **82** [जून-**2015**] अंक : **11**

राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

✳ साधन के नियम ✳

1. गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना "साधन" का मुख्य उद्देश्य है।
2. साधन प्रत्येक मास की **20-21** तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका अगले माह की **20** तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से सम्पर्क करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।
3. साधन में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।
4. लेखों को घटाने-बढ़ाने और छापने, न छापने का अधिकार सम्पादक का रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी नहीं होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।
5. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर साफ़-साफ़ लिखना चाहिए। उत्तर के लिए जबाबी कार्ड भेजना आवश्यक है।
6. साधन का वार्षिक शुल्क रुपये **150/-** है। एक प्रति का शुल्क रुपये **16/-** है। केवल विशेषांक का शुल्क रुपये **20/-** है। भारतवर्ष से बाहर दूसरे देशों में रहने वालों के लिए साधन का वार्षिक शुल्क रुपये **1400/-** है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।
7. दस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये **1350/-** है और बीस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये **2500/-** है।
8. साधन का वार्षिक शुल्क साधारण मनीआर्डर, ई. एम. ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक (जो मथुरा में देय हो) द्वारा भेज सकते हैं, जो "साधन हिन्दी मन्थली" के नाम **813**, डैम्पियर नगर, मथुरा-**281001** को भेजा जाये।
9. सत्संग साहित्य जो आप मंगाना चाहते हैं उसका कुल मूल्य एवं डाकखर्च कार्यालय से पता कर मनीआर्डर, ई.एम.ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा भेजकर मंगाया जा सकता है।

Licence to Post without Prepayment: Licence No.-AGRA/WPP-01/2015-2017
"Registered" Postal Regd.No.MTR/28/15-17: R.N.I. No- 2358 / 57
Date of Publication: 8^{th} to 15^{th} of every Month

साधन

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

मथुरा

प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, मथुरा
प्रकाशक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, डैम्पियर नगर, मथुरा
मुद्रक : आलोक कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा

E-mail: sadhanhindimonthly@gmail.com, sadhanhindimonthly@yahoo.co.in
Website: www.sadhan.in, www.facebook.com/sadhan.ramashram
Ph.: 0565-3290790, Mob.: 09319680800